सम्राट अशोक

भिक्षु सावंगी मेघंकर

भारतीय इतिहास के निर्माता

सम्राट अशोक

भिक्षु सावंगी मेधंकर

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रथम संस्करण : शक 1894 (1972)
द्वितीय संस्करण : शक 1904 (1982)
तृतीय संस्करण : शक 1916 (1994)
चतुर्थ संस्करण : शक 1922 (2000)

© प्रकाशन विभाग

ISBN : 81-230-0242-4

मूल्य: 24.00 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र • प्रकाशन विभाग

- पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001
- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- हाल नं. 196 पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चैन्नई-600090
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001
- 27/6, राममोहन राय मार्ग, लखनऊ-226001
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004
- [illegible]' विंग, प्रथम तल, केंद्रीय सदन, कोरा मंगला, बंगलौर-560034

विक्रय काउंटर • पत्र सूचना कार्यालय

- [illegible] नगर, भोपाल (म.प्र.)-462003
- [illegible] काम्पलेक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.)
- [illegible] सिंह मार्ग, जयपुर (राजस्थान)

[illegible] प्रा० लि०, W-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-II, [illegible]

अनुक्रम

1.	पाटलिपुत्र की कथा	1
2.	मौर्य साम्राज्य का आरंभ	3
3.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य	4
4.	अशोक का जन्म	8
5.	उज्जैन का उपराज	11
6.	अशोक का विवाह	15
7.	उज्जैन से पाटलिपुत्र	16
8.	तक्षशिला में	17
9.	सम्राट बिंदुसार की मृत्यु	19
10.	राज्याभिषेक	21
11.	कलिंग विजय	22
12.	धर्म-दीक्षा	25
13.	मौर्य साम्राज्य का विस्तार	27
14.	अशोक के शिलालेख	28
15.	धर्म यात्राएं	31
16.	राज्य-व्यवस्था	34
17.	व्यवसाय, व्यापार तथा खान-पान	38
18.	वास्तुकला और शिल्पकला का विकास	40
19.	सम्राट अशोक का परिवार	43
20.	बौद्ध धर्म की तीसरी संगीति	45
21.	विदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार	48
22.	अशोक और बौद्ध धर्म	52
23.	एक अद्वितीय सम्राट	54

पाटलिपुत्र की कथा

आप में से बहुतों ने रेलगाड़ी या हवाई जहाज से भारत की यात्रा की होगी। संभव है आप में से किसी ने विदेश की सैर भी की हो। किन्तु जिस प्रकार की यात्रा पर अब हम निकलने वाले हैं, वैसी यात्रा इस से पहले आपने नहीं की होगी। इस यात्रा में हम लगभग दो हजार पांच सौ वर्ष पुराने भारत की सैर करेंगे।

हम सर्वप्रथम महान वैभवशाली पाटलिपुत्र नगर को देखेंगे। यह प्राचीन नगर अब नहीं है। हां, उसी पाटलिपुत्र नगर के चारों ओर अब पटना नगर है।

आपने राजगृह या राजगीर का नाम तो सुना ही होगा। यह बिहार राज्य की राजधानी पटना से बहुत दूर नहीं है। पुरातन राजगृह बड़ा ही वैभवशाली नगर था। ढाई हजार वर्ष पूर्व वहां मगध राज्य की राजधानी थी। आज भारत में कई राज्य हैं। उनकी अलग-अलग राजधानियां तथा सरकारें हैं। किन्तु वे सब दिल्ली की केंद्रीय सरकार के अनुशासन में हैं। दो हजार पांच सौ वर्ष पहले भी भारत में सोलह महाजनपद या राज्य थे। पर वे सब स्वतंत्र राज्य थे। उनमें मगध जनपद बड़ा शक्तिशाली था।

उस समय के मगध जनपद का राजा बिंबिसार भगवान बुद्ध (इ० पू० 563 से 483) का समकालीन था। दोनों एक-दूसरे से सुपरिचित थे। बिंबिसार जब वृद्ध हुआ तो उसके पुत्र अजातशत्रु ने पिता की हत्या कर डाली और स्वयं राजगद्दी पर बैठ गया।

मगध की राजधानी राजगृह के पास ही गंगा और सोन नदी के संगम पर पाटलिग्राम नाम का एक गांव था। गंगा के उत्तर में प्रसिद्ध वज्जि जनपद था। इस वज्जि संघ में अनेक शक्तिशाली गणराज्य सम्मिलित थे। ये पंचायती राज्य थे। राजा अजातशत्रु वज्जि संघ को अपने मगध राज्य में मिलाना चाहता था। इसलिए उसका प्रधानमंत्री पाटलिग्राम में किलेबंदी करने में लगा हुआ था। उसी समय राजगृह से कुशीनगर जाते समय भगवान बुद्ध ने पाटलिग्राम में विश्राम किया था।

राजा अजातशत्रु ने पाटलिपुत्र नगर की नींव डाली थी, किंतु वह उसे पूरा न कर सका। जिस प्रकार अजातशत्रु ने अपने पिता बिंबिसार की हत्या की थी, ठीक उसी प्रकार उसके पुत्र उदाईभद्र ने भी अपने पिता की हत्या कर डाली। इसके बाद ही पाटलिपुत्र नगर का निर्माण शुरू हुआ। उदाईभद्र ने पाटलिपुत्र को विशाल और शानदार नगर बना, राजगृह को छोड़ उसे ही मगध राज्य की राजधानी बनाया। इसी कारण राजा उदाईभद्र को ही पाटलिपुत्र नगर का संस्थापक कहा जाता है।

आप जानना चाहेंगे कि इस नगर का नाम पाटलिपुत्र क्यों पड़ा। कहा जाता है कि जिस जगह इसकी स्थापना हुई वहां सुंदर लाल फूलों वाला पाटलि का वृक्ष था। उसी के कारण इस नगर का नाम पाटलिपुत्र पड़ा। उन्हीं सुन्दर फूलों के कारण यह कुसुमपुर और पुष्पपुर भी कहलाया।

भारत में बहुत पहले आर्य लोग पश्चिम दिशा से आगे फैल रहे थे। वे बहुत छोटे-छोटे कबीलों में बसे हुए थे जिन्हें 'जन' कहते थे। जिन प्रदेशों में वे 'जन' बसे उन प्रदेशों को वे 'जनपद' के नाम से जानते थे। प्रत्येक जनपद में प्राय: एक जन या एक ही कबीले के लोग रहते थे। जनों के नाम पर ही जनपदों के नाम पड़े थे। जैसे अंग, मगध, काशी, कोशल, कुरु, पांचाल आदि।

इन जनपदों में शासन की प्रणाली अनेक तरह की थी। 'जन' एक बड़े परिवार के समान था। जिस प्रकार परिवार में सबसे वृद्ध आदमी ही उसका मुखिया या कर्ता होता है, उसी प्रकार सबसे वृद्ध और अनुभवी आदमी को ही जनपद का शासक चुना जाता था। उसको गणपति कहते थे। वह जनपद की संपत्ति की रक्षा करता था। सभा में उस 'जन' या 'गण' के सदस्य जो राय देते थे, वह उसी के अनुसार कार्य करता था।

भारत में इन प्राचीन जनपदों की राज्य व्यवस्था दो प्रकार की थी। एक गणतंत्र और दूसरी राजतंत्र। गणतंत्र में कोई पुश्तैनी राजा नहीं होता था। जनपद के गणपति या सभापति का चुनाव हुआ करता था। राजतंत्र वाले जनपदों में पुश्तैनी राजा होते थे।

भारत के अनेक जनपदों में से एक जनपद मगध था। बिहार राज्य के जो प्रदेश आजकल पटना और गया जिले के अंतर्गत हैं, उन्हीं का पुराना नाम 'मगध' था। पहले इसकी राजधानी गिरिव्रज थी। फिर राजगृह बनी और बाद में राजा उदाईभद्र ने पाटलिपुत्र (पटना) को राजधानी बनाया।

मगध के इस आर्य-जनपद में कई तरह के लोग रहते थे। दूसरे जनपदों में ऐसा नहीं था। कई प्रकार के लोगों के होने के कारण ही बहुत पुराने समय से इस जनपद में एक नये ढंग के साम्राज्यवाद का विकास होने लगा था। मगध के इस साम्राज्य ने भारत के कई जनपदों को अपने साथ शामिल कर लिया।

मौर्य साम्राज्य का आरंभ

राजा बिंबिसार के समय और उसके बाद मगध राज्य की काफी उन्नति हुई। धीरे-धीरे वह उत्तरी भारत का सबसे बड़ा राज्य बन गया। मगध की पहली और पुरानी राजधानी गिरिव्रज थी। पर इस नगर पर गंगा के उत्तर में स्थित वज्जि संघ के आक्रमण का खतरा रहता था। इस कारण राजा बिंबिसार ने उससे थोड़ी दूरी पर राजगृह नगर की स्थापना की। इस के बाद उदाईभद्र ने पाटलिपुत्र की स्थापना कर मगध का एक नया इतिहास आरम्भ किया।

राजा बिंबिसार से लेकर नंद वंश के धननंद तक, जितने भी शासक मगध की गद्दी पर बैठे, उन सबने मगध के साम्राज्य को बढ़ाया। अंग, काशी, वज्जि, मल्ल, वत्स, अवंति, कुरु, पांचाल, चेदि, शूरसेन, मत्स्य और कोशल-बौद्ध काल के कुल सोलह जनपदों में से ये बारह जनपद मगध साम्राज्य के अंतर्गत हो गए।

मगध का शासक महापद्मनंद जिस समय बंगाल की खाड़ी से सतलुज तक, सम्पूर्ण उत्तरी भारत में मगध राज्य की स्थापना कर रहा था, उसी समय बहुत दूर पश्चिम में मेसिडोनिया का राजा फिलिप सारे यवन (ग्रीस) देश को साम्राज्य बनाने में लगा हुआ था। भारत के समान यवन देश में भी उस समय बहुत से छोटे-छोटे राज्य थे।

राजा फिलिप के पुत्र सिकंदर ने आचार्य अरस्तू की शिक्षा पर चल कर यवन राज्य से बाहर पूर्व की ओर पैर फैलाना शुरू कर दिया था। उसने मिस्त्र, एशिया-माइनर, ईरान और अफगानिस्तान को जीत लिया और हिंदुकुश पर्वतमाला को लांघ कर भारत की भूमि में प्रवेश किया। सिकन्दर की यवन सेनाएं पंचनद (पंजाब) के गणराज्यों से लड़ती-लड़ती थक गयी थीं। मगध साम्राज्य से भिड़ने का उन्हें साहस नहीं हुआ। सिकन्दर को वहीं से वापस लौट जाना पड़ा।

सिकन्दर की सेनाओं ने उत्तर-पश्चिमी भारत को बहुत कमजोर बना डाला था। इसी कारण मगध साम्राज्य उन प्रदेशों को आसानी से जीतने में सफल हुआ। यह कार्य सम्राट अशोक के दादा और मौर्य साम्राज्य के संस्थापक सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य ने किया। हम आगे देखेंगे कि सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य ने किस प्रकार उत्तर-पश्चिमी भारत पर विजय प्राप्त की।

सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य

बुद्ध के समय में भारत सोलह महाजनपदों में बंटा हुआ था। इन जनपदों के अलावा, कुछ और छोटे जनपद भी थे। इनमें पिप्पलिवन का मोरिय गण भी था। वह उत्तरी बिहार में, नेपाल की तराई में वज्जि जनपद के पड़ोस में था। कहा जाता है कि राजा बिंबिसार और अजातशत्रु के आक्रमणों से तंग आकर कुछ स्वतंत्रता प्रेमी लोग वहां जाकर बसे थे। किन्तु मगध नरेश ने वहां भी उन्हें चैन से नहीं रहने दिया। मगध ने उत्तरी बिहार के अन्य गणराज्यों के साथ मोरिय गण को भी अपने राज्य में मिला लिया।

मोरिय गण (मौर्य वंश) की एक रानी पाटलिपुत्र नगर में छिप कर अपना जीवन बिता रही थी। उसके भाई-बंधु भी वहीं उसके साथ थे। मगध सम्राट के कोप से बचे रहने के लिए मोरिय गण के इन सब लोगों ने, विशाल पाटलिपुत्र में छिपे रहने में ही अपना कल्याण समझा। उसी हालत में उस परिवार में अशोक के दादा कुमार चंद्रगुप्त का जन्म हुआ।

कुमार चंद्रगुप्त की माता मगध के राजकर्मचारियों से डरती थी कि वे कहीं कुमार को मार न डालें। इसीलिये उसने नवजात शिशु को एक ग्वाले को सौंप दिया था। इस प्रकार अपनी उम्र के दूसरे बच्चों के साथ खेलते-खेलते मोरिय गण के राजकुमार चंद्रगुप्त का ग्वालों के बीच पालन-पोषण होने लगा।

एक बार गाय चराते समय जंगल में सारे बच्चे एक अनोखा खेल खेलने लगे। चंद्रगुप्त राजा बना। अन्य बालकों को उपराज, न्यायाधीश, राज-कर्मचारी, चोर, डाकू आदि बनाया गया। राज-कर्मचारी चोर को राजा के सामने लाए। बालक राजा ने दोनों ओर के बयान सुने और न्यायाधीश के निर्णय के अनुसार अपना फैसला सुना दिया। उसने चोरों को कड़ी सजा दी।

चंद्रगुप्त और उस के साथियों का यह खेल चाणक्य नाम का एक ब्राह्मण कुछ दूरी पर खड़ा देख रहा था। जिस समझदारी और शान से कुमार चंद्रगुप्त राजा की भूमिका निभा रहा था, उसे देख चाणक्य को लगा कि यह बालक बड़ा होनहार है।

शाम को चाणक्य, कुमार चंद्रगुप्त का पीछा करता-करता उसके गांव पहुंचा। उसने कुमार के संरक्षक ग्वाले के सामने एक हजार कार्षापण (उस समय का रुपये के समान सिक्का) रखे और कहा, "मैं तुम्हारे पुत्र को सब विद्याएं सिखाऊंगा। इसे तुम मेरे साथ भेज दो।"

ग्वाला तैयार हो गया। चाणक्य, कुमार चंद्रगुप्त को अपने साथ ले गया। चाणक्य से चंद्रगुप्त ने सभी विद्याएं भलीभांति सीखीं।

चंद्रगुप्त और उसके साथियों का यह खेल
चाणक्य नाम का ब्राह्मण कुछ दूरी पर खड़ा देख रहा था।

चाणक्य तक्षशिला का प्रसिद्ध आचार्य था। तक्षशिला उस समय विद्या का केन्द्र थी। चाणक्य अपने समय का राजनीतिशास्त्र का सबसे बड़ा पंडित माना जाता था। उस समय पाटलिपुत्र के वैभव की सारे भारत में धूम थी। चाणक्य को आशा थी कि मगध का सम्राट धननंद उसका बहुत सम्मान करेगा। इसी आशा से वह पाटलिपुत्र गया था।

आचार्य चाणक्य देखने में कुरूप था। उसके सामने के दांत टूटे हुए थे। राजा धननंद ने जब ऐसे व्यक्ति को प्रमुख आसन पर बैठे देखा तो पूछा -

"इस प्रमुख आसन पर बैठने वाले तुम कौन हो ?"

आचार्य चाणक्य से उत्तर मिला - "यह मै हूं।"

राजा धननंद गुस्से में आपे से बाहर हो गया। उसने आज्ञा दी -

"इस नीच ब्राह्मण को यहां से धक्के देकर निकाल दो।"

भला चाणक्य ऐसे अपमान को कहां सहने वाला था। उसने अपना कमंडल जमीन पर पटक दिया और गर्जना की -

"राजा उद्धत हो गया है। समुद्र से घिरी सारी पृथ्वी अब नंद का नाश देखेगी।"

आचार्य चाणक्य ने प्रतिज्ञा की कि वह नंद वंश का नाश कर मगध के सिंहासन पर अपना राजा बिठाएगा।

चाणक्य ने सबके सामने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे पूरी करने के लिये वह अपनी सारी शक्ति लगा रहा था। नंद वंश के राजकुमार पर्वतक को चाणक्य ने धननंद के विरुद्ध षड़यंत्र करने के लिए अपने पक्ष में कर लिया। उसे लेकर चाणक्य विंध्याचल के जंगलों में चला गया। वहां उसने एक बड़ी सेना खड़ी की।

लेकिन चंद्रगुप्त में सम्राट बनने के सारे लक्षण थे, जो कुमार पर्वतक में नहीं थे। अब चाणक्य पर्वतक को चंद्रगुप्त के मार्ग से हटाना चाहता था। वह इस कार्य में सफल भी हो गया।

चंद्रगुप्त सेनानायक बनने में समर्थ था। उसने आचार्य चाणक्य के निरीक्षण में मगध साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। अनेक गांवों तथा नगरों पर हमले किए गए। किन्तु सफलता नहीं मिली। मगध सेनाओं से परास्त होकर चंद्रगुप्त को जंगलों में छिपकर अपनी जान बचानी पडी।

एक बार आचार्य चाणक्य और चंद्रगुप्त वेश बदल कर एक गांव में पहुंचे। एक घर की खिड़की मे उन्होंने देखा कि एक स्त्री अपने पुत्र को पूए बनाकर खिला रही है। लड़का चारों ओर के किनारों को छोड़ता हुआ केवल बीच का ही भाग खा रहा था। यह देखकर माता ने कहा - "तुम्हारा व्यवहार चंद्रगुप्त जैसा ही है, जिसने अपनी मूर्खता के कारण सीमांत-प्रदेश को जीते बिना ही, गांवों और नगरों पर आक्रमण कर दिया।"

यह बात सुन कर चाणक्य और चंद्रगुप्त की आंखें खुलीं।

माता ने बालक से कहा –"तुम्हारा व्यवहार चंद्रगुप्त जैसा ही है।"

इसी समय वीर सिकंदर ने गांधार और पंजाब पर हमले किए। मगध पर विजय प्राप्त करने के लिए चंद्रगुप्त सिकंदर की मदद लेना चाहता था। किंवदंती है कि वह एक बार उससे मिलने भी गया, पर स्वेच्छाचारी सिकंदर से उसका मेल नहीं बैठा। सिकंदर और चंद्रगुप्त दोनों ही स्वतंत्र प्रकृति के और महत्वाकांक्षी थे।

सिकंदर न तो पंजाब की भूमि से आगे पैर बढ़ा सका और न ही अपने वतन मैसिडोनिया लौट सका। लौटते समय ई० पू० 323 में बेबिलोन नगरी में उसकी मृत्यु हो गयी।

आचार्य चाणक्य और चंद्रगुप्त के नेतृत्व में यूनानी शासन के विरुद्ध पंजाब में विद्रोह हुआ। सिकंदर के आदमियों को पंजाब से भगाकर चंद्रगुप्त ने वहां अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इस प्रकार सीमाप्रदेश को अपने अधीन कर वहां के वीर सैनिकों को अपने साथ मिला कर चाणक्य और चंद्रगुप्त पूर्व की ओर बढ़ने लगे। जो ग्राम और नगर उनके रास्ते में आए उन्हें जीतते हुए वे पाटलिपुत्र जा पहुंचे। वहां धननंद को परास्त कर उन्होंने मगध साम्राज्य पर अपना अधिकार कर लिया।

अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आचार्य चाणक्य ने नंद वंश का नाश किया और चंद्रगुप्त मौर्य को विशाल मगध साम्राज्य का सम्राट बना दिया। स्वयं आचार्य चाणक्य चंद्रगुप्त का प्रधान अमात्य बना।

अशोक का जन्म

चंद्रगुप्त मौर्य ने ईसा पूर्व 322 से ई० पू० 298 तक राज्य किया। चौबीस वर्ष के अपने शासन काल में उसने मौर्य साम्राज्य को सारे उत्तर भारत में फैला दिया। सम्राट चंद्रगुप्त के बाद उसका पुत्र बिंदुसार मौर्य सम्राट बना। ग्रीक लेखकों ने उसे अमित्रघातक लिखा है। अमित्रघातक का अर्थ होता है शत्रुओं का नाश करने वाला।

आचार्य चाणक्य ही चंद्रगुप्त मौर्य और उसके साम्राज्य के निर्माता थे। वे उसके राज्य काल में उसके प्रधानमंत्री रहे और बाद में बिंदुसार के समय में भी थोड़े समय तक उसी पद पर आसीन रहे। उनका एक नाम विष्णुगुप्त भी था। उनको कौटिल्य नाम से भी जाना जाता है। उन्होंने राजनीति के प्रमुख ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' की रचना की।

चंद्रगुप्त ने जिस साम्राज्य को बनाया था, बिंदुसार ने न केवल उसकी रक्षा की, बल्कि आस-पास के और प्रदेश जीत कर, मौर्य साम्राज्य का और भी अधिक विस्तार कर दिया।

जिस समय चंद्रगुप्त अपने जीते हुए नए साम्राज्य को दृढ़ करने में लगा हुआ था, उसी समय सिकंदर के दो सेनापति सेल्यूकस और ऐंटिगोनस भी आपस में राज्य के लिए संघर्ष कर रहे थे। सेल्यूकस, ऐंटिगोनस को हराकर सम्राट बना। उसकी राजधानी सीरिया में थी। वह एशिया माइनर से हिंदुकुश तक फैले एक विशाल साम्राज्य का अधिपति हो गया था। उसने ई० पू० 306 में अपना विधिवत राज्याभिषेक कराया था।

पश्चिमी और मध्य एशिया में अपने साम्राज्य को और शक्तिशाली बनाने के लिए सेल्यूकस ने ई० पू० 305 में भारत पर आक्रमण किया। बिना किसी रुकावट के वह सिंधु नदी तक आ पहुंचा था। उसका सामना करने के लिए सिंधु तट पर चंद्रगुप्त की सेना तैयार थी। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। युद्ध के पश्चात् दोनों सम्राटों में संधि हुई। उसकी शर्तें थीं -

1. चंद्रगुप्त सेल्यूकस को 500 हाथी देगा।
2. इसके बदले में सेल्यूकस निम्नलिखित चार प्रदेश चंद्रगुप्त को देगा -

1-अफगानिस्तान का पहाड़ी प्रदेश, 2-कंदहार, 3-हेरात, 4-गद्रासिया (बलूचिस्तान)। सेल्यूकस ने चंद्रगुप्त के साथ अपनी कन्या का विवाह भी किया।

इस संधि से मौर्य साम्राज्य को बहुत लाभ हुआ। इससे उसकी पश्चिमी सीमा हिंदुकुश के पश्चिम में भी कुछ दूर तक फैल गई। संधि के बाद सेल्यूकस ने मैगस्थनीज को राजदूत नियुक्त कर चंद्रगुप्त की राजसभा में भेजा। वह बहुत समय तक मौर्य-साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में रहा। उसने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में उस समय के भारत का बहुत अच्छा वर्णन किया है।

सम्राट बिंदुसार के समय में दक्षिण भारत में भी मौर्य साम्राज्य का विस्तार हुआ। प्राचीन तमिल साहित्य में लिखा है कि मौर्यों ने दक्षिण भारत पर बार-बार आक्रमण किए। मौर्यों की सेनाएं कोंकण से कर्नाटक और उसके भी दक्षिण में तुलू प्रदेश से होती हुई कोयंबतूर की ओर आगे बढ़ीं तथा मदुरा तक पहुंची।

पुराने समय में राजाओं की बहुत सी रानियां हुआ करती थीं। जिस जगह उनकी रानियां और दासियां रहती थीं, उसको अंत:पुर कहा जाता था। किंवदंती है कि सम्राट बिंदुसार की सोलह रानियां थीं और सौ पुत्र थे। उनमें अशोक ही सबसे अधिक योग्य सिद्ध हुए।

अशोक की माता के बारे में कई प्रकार की कथाएं प्रचलित हैं। हम उन सबको छोड़ यहां इतना ही याद रखें कि अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी या जनपद-कल्याणी था। वह चंपा के ब्राह्मण की परमसुंदरी कन्या थी। इस बारे में एक कहानी है -

"चंपा नगरी में एक गरीब ब्राह्मण रहता था। उसकी बहुत ही सुंदर कन्या थी। इसी कारण उसका नाम सुभद्रांगी जनपद-कल्याणी पड़ा था। ब्राह्मण ने अपने लड़की के भविष्य के बारे में ज्योतिषियों से पूछा। उन्होंने बताया कि उसका पति कोई राजा होगा। उसका एक पुत्र सम्राट बनेगा और दूसरा भिक्षु या सन्यासी होगा।

सुनकर ब्राह्मण बहुत खुश हुआ। वह अपनी पुत्री को लेकर पाटलिपुत्र चला गया। ब्राह्मण ने उसे अच्छे-अच्छे वस्त्रों और गहनों से सजाया और राजा बिंदुसार के पास ले गया। सुभद्रांगी अंत:पुर में काम करने लगी।

अंत:पुर में प्रवेश करते ही उसकी सुंदरता को देखकर दूसरी रानियां आशंकित हो गईं। रानियों ने उसे नाइन का काम सिखाया। जब राजा सोने जाता तो सुभद्रांगी उसके सिर की मालिश किया करती। एक दिन राजा उस पर बहुत प्रसन्न हुआ। तब सुभद्रांगी ने अपना परिचय दिया।

"तुझे नाइन का काम किसने सिखाया ?" राजा ने पूछा।

सुभद्रांगी ने उत्तर दिया - "अंत:पुर की रानियों ने।"

इसके बाद उस परम सुंदरी को नाइन का काम करने की जरूरत नहीं पड़ी। राजा बिंदुसार ने उसे अपनी पटरानी बनाया।

कुछ दिन बाद सुभद्रांगी ने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने रानी सुभद्रांगी से पूछा, "इस बालक का क्या नाम रखा जाए ?"

रानी ने उत्तर दिया – "देव ! इस बच्चे के पैदा होने से मैं अशोक, शोक-रहित हो गई हूं। इसलिए इनका नाम अशोक रखा जाए।" रानी की इच्छा के अनुसार बालक का नाम अशोक ही रखा गया। कुछ वर्षों बाद रानी का दूसरा पुत्र हुआ जिसका नाम विगतशोक रखा गया।

सब राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा की उचित व्यवस्था की गई थी। उनको वे सब विद्याएं सिखाई गई जो राजकुमारों के काम की थीं। अशोक अपने भाइयों में सबसे तीव्र बुद्धि का था। उसने बहुत ही जल्दी शास्त्र और शस्त्र सम्बन्धी ज्ञान हासिल कर लिया। इससे उसके दूसरे भाई और विशेष रूप से उसका सौतेला भाई सुसीम उससे ईर्ष्या करने लगे। राजकुमार जब युवा हुए तो उनको शासन का काम भी सिखाया गया।

उज्जैन का उपराज

प्रारंभ में अशोक बड़ा निर्दयी था। वह देखने में सुंदर नहीं था। शुरू में अशोक ने अनेक क्रूर कार्य भी किए। शायद इसी कारण उसे चंडाशोक कहा गया। सम्राट बिंदुसार अशोक के सौतेले भाई सुसीम को अधिक चाहता था लेकिन सम्राट बिंदुसार यह भी जानता था कि उसके पुत्रों में वही सबसे योग्य है। आयु में सुसीम ही अशोक से बड़ा था और परंपरा के अनुसार वही राज्य का उत्तराधिकारी भी था। बिंदुसार भी सुसीम को अपने बाद साम्राज्य का स्वामी बनाना चाहता था।

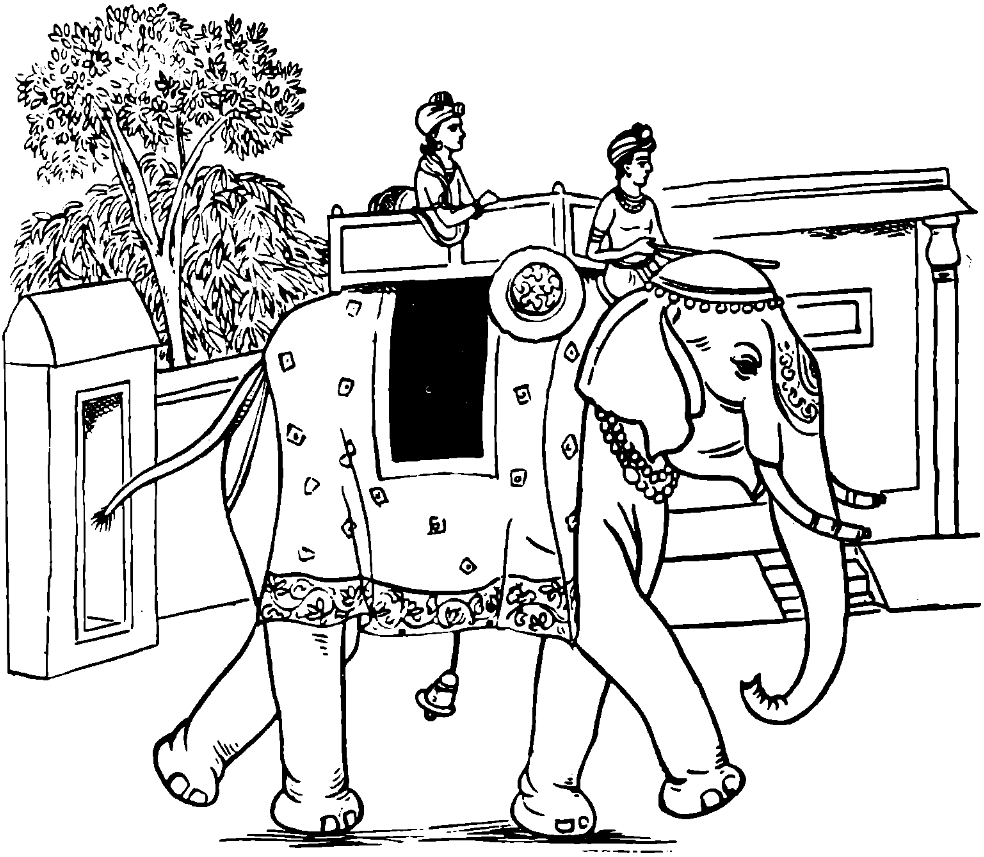

अशोक हाथीपर बैठकर सुवर्ण मंडप उद्यान में पहुंचा

किंतु सम्राट बिंदुसार साथ ही यह भी जानना चाहता था और अपने मंत्रियों को भी बताना चाहता था कि उसके पुत्रों में अधिक योग्य कौन है और राज्य का भार कौन संभाल सकेगा ? इस बारे में यह कहानी प्रचलित है-

एक दिन बिंदुसार ने पिंगल वत्सजीव नामक एक आजीवक साधु से कहा कि आप हमारे सब कुमारों की परीक्षा लें और पता करें कि उनमें सबसे योग्य कौन है ? पिंगल वत्सजीव ने कहा कि आप कुमारों को लेकर सुवर्ण मंडप उद्यान में आएं। मैं वहां परीक्षा लूंगा।

राजा सब कुमारों को लेकर बाग में गया। किंतु अशोक नहीं गया।

अशोक की माता ने उससे पूछा कि तुम परीक्षा देने बाग में क्यों नहीं गए ? उसने कहा- "माता, राजा को तो मेरी शक्ल भी अच्छी नहीं लगती, मैं जाकर क्या करूंगा।" परंतु उसकी माता ने आग्रह किया कि तुम जरूर जाओ। तब अशोक बोला - "अच्छा मैं जाता हूं, मेरे लिए भोजन भेज देना।"

अशोक महल से बाहर निकला। रास्ते में उसे अपना मित्र मंत्री का पुत्र राधागुप्त मिला।। राधागुप्त ने पूछा - "राजकुमार, तुम कहां जा रहे हो ?" अशोक ने कहा - "आज सुवर्ण मंडप उद्यान में राजकुमारों की परीक्षा है, वहीं जा रहा हूं।" राधागुप्त ने कहा - "लो, यह हाथी खड़ा है, इस पर बैठ कर जाओ।" अशोक हाथी पर बैठकर सुवर्ण मंडप उद्यान में पहुंचा। वहां सब राजकुमार सोने-चांदी के अच्छे-अच्छे आसनों पर बैठे हुए थे। अशोक के लिए कोई जगह नहीं थी। वह अपना दुपट्टा बिछाकर जमीन पर बैठ गया। इसके बाद सोने-चांदी के बर्तनों में राजकुमारों का भोजन आया। अशोक के लिए उसकी मां ने मिट्टी के बर्तनों में दही-भात और मिट्टी के कूजे में पानी भेजा।

जब सब राजकुमार खा-पी चुके तो सम्राट बिंदुसार ने परिव्राजक वत्सजीव से पूछा - "आचार्य! आपने सब राजकुमारों को देखा। बताइए, इनमें सबसे योग्य कौन है ?"

परिव्राजक मन-ही-मन में समझ गया था कि अशोक ही सबसे योग्य है, पर राजा अशोक को नहीं चाहता था, इसलिए साफ-साफ न कहकर बोला - "महाराज, जिस राजकुमार का यान (सवारी) सबसे अच्छा है, वही सबसे योग्य है।" दूसरे राजकुमारों ने सोचा कि हम सोने-चांदी के रथ पर बैठकर आए हैं इसलिए हम योग्य हैं। पर अशोक समझ गया कि वीरों और राजाओं के लिए सबसे अच्छी सवारी हाथी ही है, इसलिए मेरा यान सबसे अच्छा है।

राजा ने परिव्राजक से फिर कहा - "आचार्य, और परीक्षा लीजिए।" परिव्राजक ने कहा - "महाराज, जिसका आसन सबसे अच्छा है वही सबसे योग्य है।" राजकुमारों ने सोचा कि हमारे आसन सोने-चांदी के हैं इसलिए अच्छे हैं, परंतु अशोक समझ गया कि सबसे अच्छा आसन तो धरती माता का ही होता है। जो धरती को प्रेम करता है, जिसके पैर धरती पर खड़े होते हैं, वही जीतता है।

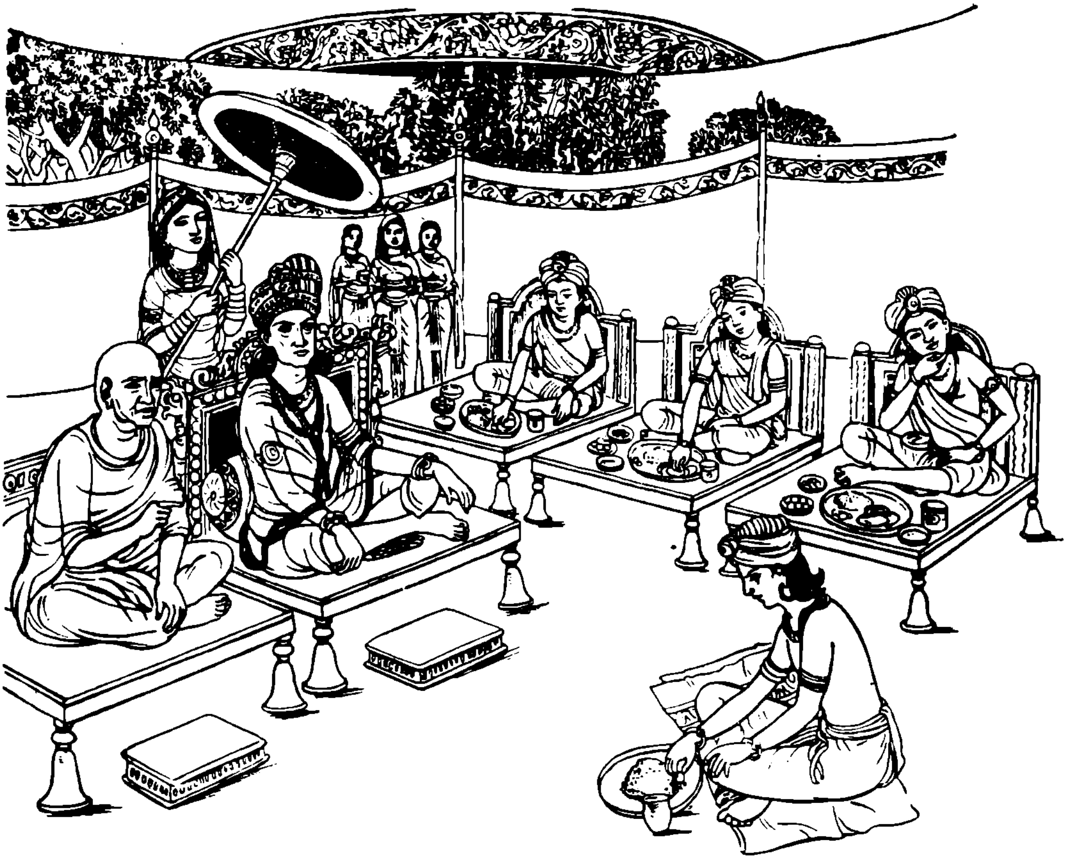

अशोक के लिए उसकी मां ने मिट्टी के बर्तनों में दही-भात और मिट्टी के कूजे में पानी भेजा।

इसी तरह परिव्राजक ने कहा कि जिसके बर्तन और भोजन सामग्री सबसे अच्छी है, वही योग्य है। दूसरे राजकुमार अपने सोने-चांदी के बर्तन और स्वादिष्ट व्यंजनों पर फूल रहे थे। परंतु वास्तव में सबसे अच्छे बर्तन और खाने-पीने की चीजें अशोक की ही थीं। उसके बर्तन साफ-सुथरे और सोंधी मिट्टी के थे। उसका भोजन दही-भात और पेय शुद्ध जल था, इसलिए अशोक ही सबसे योग्य ठहरा। परिव्राजक इस बात को समझ गया यद्यपि और राजकुमार भ्रम में रहे।

सम्राट चंद्रगुप्त के समान ही बिंदुसार के राज्यकाल में भी भारत का विदेशों के साथ राजनीतिक संबंध बना रहा। उस समय सेल्यूकस का उत्तराधिकारी एंटियोकस सीरियाई साम्राज्य का सम्राट था। उसने डायमेचस को अपना राजदूत बनाकर पाटलिपुत्र भेजा। प्राचीन यूनानी लेखकों ने एंटियोकस और बिंदुसार के संबंध में अनेक कथाएं लिखी हैं।

एक कथा यह है कि एक बार बिंदुसार ने एंटियोकस को लिख भेजा कि कृपा करके मेरे लिए कुछ अंजीर, अंगूर की शराब और एक यूनानी अध्यापक खरीदकर भेज दो। एंटियोकस ने अंजीर और अंगूर की शराब तो खरीदकर भेज दी पर अध्यापक के बारे में कहला भेजा कि यूनान में अध्यापकों का क्रय-विक्रय नहीं होता।

उस समय मिस्र का राजा टाल्मी फिलेडेल्फस था। उसने डायोनीसियस नाम का राजदूत पाटलिपुत्र में भेजा था। वह काफी समय तक बिंदुसार के दरबार में रहा। उसने भी मैगस्थनीस की तरह ही उस समय के भारत का विवरण लिखा है। उसकी लिखित सामग्री ईसा की प्रथम सदी तक अवश्य सुरक्षित रही, किंतु अब नहीं मिलती।

चंद्रगुप्त के राज्य काल में मौर्य साम्राज्य का प्रधानमंत्री आचार्य चाणक्य विष्णुगुप्त था। बिंदुसार के शासन के शुरू के वर्षों में वही प्रधान अमात्य रहा। उसके बाद राधागुप्त प्रधान अमात्य बना।

मौर्य साम्राज्य के साथ-साथ मौर्य सम्वत की भी स्थापना हुई। इन दोनों के संस्थापक सम्राट चंद्रगुप्त ही थे। एक शिलालेख में, 'मोरिय संवत' का उल्लेख मिलता है।

सम्राट बिंदुसार अशोक को नहीं चाहता था, परतु उसके मंत्री अशोक पर प्रसन्न थे। खासतौर से प्रधान अमात्य राधागुप्त अशोक से बहुत ही प्रभावित था। उसने अशोक के मौर्य सम्राट बनने में खूब मदद की।

जैसे आज सम्पूर्ण भारत का एक राष्ट्रपति होता है और हर प्रदेश या राज्य के अलग-अलग गवर्नर या राज्यपाल होते हैं, वैसे ही उस समय सम्पूर्ण राज्य का स्वामी सम्राट या राजा हुआ करता था और दूर के प्रांतों के शासक उपराज हुआ करते थे। वे प्राय: राजकुमार या राजपरिवार के लोग ही होते थे। राजपरिवार के लोग न मिलें तो कोई दूसरा सुयोग्य व्यक्ति नियुक्त किया जाता था।

सम्राट बिंदुसार ने सुसीम को उपराज बना कर तक्षशिला भेजा और अशोक को उपराज बना कर उज्जैन भेजने का निर्णय किया। कुमार अशोक को आज्ञा का पालन करना पडा। उसने उज्जैन जाने की सारी तैयारी की और पाटलिपुत्र से उज्जैन को निकल पड़ा। अशोक ने इस पद पर बड़ी योग्यता से काम किया।

अशोक का विवाह

कुमार अशोक उज्जैन को रवाना हुआ। उन दिनों आज जैसे आने-जाने के साधन नहीं थे। पाटलिपुत्र से उज्जैन काफी दूर है। रथ या हाथी द्वारा ही यात्रा की जाती थी। अशोक के साथ नौकर-चाकर और सैनिक भी थे।

पाटलिपुत्र से उज्जैन जाते हुए रास्ते में विदिशा नाम की नगरी थी। वह उस समय वैभवशाली नगरी थी।

नगर की शोभा देखने के लिए अशोक कुछ दिन तक वहां रुका। वहां के सामंत और श्रेष्ठियों (सेठों) ने उसका यथोचित आदर-सत्कार किया।

उसी नगरी में एक श्रेष्ठी रहता था। उसकी एक कन्या थी। वह सुंदर और भाग्यवती थी। इसी कारण उसके पिता ने उसका नाम देवी रखा था। वह बाद में विदिशा-महादेवी के नाम से प्रख्यात हुई।

उपराज अशोक का देवी के साथ परिचय हुआ। दोनों एक-दूसरे की ओर आकर्षित हुए। देवी के पिता श्रेष्ठी ने उसका विवाह अशोक के साथ ई० पू० 285 में कर दिया।

कुछ रोज वहीं ठहरने के बाद अशोक रानी देवी के साथ उज्जैन पहुंचा। देवी के साथ उसके पिता द्वारा भेजी गई अनेक दासियां एवं सेविकाएं भी थीं।

उज्जैन पहुंचने पर अशोक ने शासन का भार संभाला। वहां उस समय अशांत परिस्थितियां थीं। बिंदुसार ने परिस्थिति को संभालने के लिए ही अशोक को भेजा था।

विवाह के एक वर्ष बाद उज्जैन में ही अशोक की रानी देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। यही बालक था जो आगे चल कर महिंद महास्थविर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी ने सिंहल द्वीप (वर्तमान श्रीलंका) में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ।

महिंद के जन्म से दो वर्ष पश्चात् (ई० पू० 282) देवी ने एक कन्या को जन्म दिया। उसका नाम संघमित्रा रखा गया। यही संघमित्रा बौद्ध भिक्षुणी होकर अपने बड़े भाई की तरह श्रीलंका पहुंची और उसने वहां भिक्षुणी संघ की स्थापना की। लोकश्रुति है कि संघमित्रा द्वारा रोपा गया महाबोधि वृक्ष श्रीलंका के अनुराधापुर नगर में आज भी है।

अब उपराज अशोक एक पुत्र और एक पुत्री के पिता थे।

उज्जैन से पाटलिपुत्र

आज हमारे पास शीघ्रातिशीघ्र किसी भी स्थान पर पहुंचने के लिए मोटर गाड़ी, रेल गाड़ी और हवाई जहाज जैसे वाहन हैं। इसी प्रकार एक राज्य से दूसरे राज्य के साथ सबंध जोड़ने के लिए डाक, तार और टेलिफोन की व्यवस्था है। प्राचीन काल में ये सब सुविधाएं नहीं थीं।

आज भारत की राजधानी दिल्ली से पूरे देश का प्रशासन संभाला जाता है। किसी भी राज्य या प्रदेश में कोई गड़बड़ी हो जाने पर तुरंत दिल्ली में बैठे-बैठे ही आदेश दिया जा सकता है। जरूरत होने पर रेल या हवाई जहाज द्वारा कहीं भी सुरक्षा बल भेजे जा सकते हैं।

पुराने समय में इस प्रकार की सुविधाएं न होने के कारण सुदूर राज्यों में समय-समय पर विद्रोह हो जाते थे। ऐसी अवस्था में राजधानी से वहां सेना भेजने में बहुत समय लग जाता था। कभी-कभी तो सेनाओं के पहुंचते-पहुंचते वारा-न्यारा हो जाता था।

मौर्य साम्राज्य काफी विशाल हो गया था। अत: पाटलिपुत्र में बैठकर सारे साम्राज्य की ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं हो पाती थी। सुदूर प्रान्तों में सूबेदार या उपराज नियुक्त करके भेज दिए जाते थे। लेकिन फिर भी कभी -कभी उनकी असावधानी के कारण विद्रोह की चिनगारियां सुगबुगा उठती थीं।

तक्षशिला का सूबा पाटलिपुत्र से बहुत दूर पड़ता था। जिस समय अशोक उज्जैन में उपराज बनकर राज-कार्य चला रहा था, उसी समय तक्षशिला में वहां की जनता ने विद्रोह किया।

उज्जैन में मिले यश के कारण अब राज्य के अधिकारी अशोक की शक्ति तथा कार्य-क्षमता से परिचित हो चुके थे। अशोक सुदर न सही पर वीर और दृढ़संकल्प वाला था। वह हर चुनौती का सामना करने में सक्षम था। इसलिए सम्राट बिंदुसार ने तक्षशिला के विद्रोह को शांत करने के लिए अशोक को उज्जैन से तुरंत बुला भेजा।

राजाज्ञा पाकर अशोक रानी देवी को विदिशा में उसके पिता के पास छोड़ कर पाटलिपुत्र पहुंचा। महिंद तथा संघमित्रा को वह अपने साथ पाटलिपुत्र ले आया था।

तक्षशिला में

तक्षशिला मौर्य साम्राज्य के पश्चिम-उत्तर भाग उत्तरापथ की राजधानी थी। वहां बार-बार विद्रोह हुआ करते थे। चूंकि उत्तर-पश्चिम भारत का यह प्रांत पहले स्वतन्त्र था और वहां गणराज्य थे इसलिए वहां के लोग उसी प्रकार की राज्य-व्यवस्था चाहते थे।

इस प्रदेशवासियों को सबसे पहले यवनों के साथ संघर्ष करना पड़ा। चंद्रगुप्त मौर्य की मदद से उन्होंने यवनों को उत्तर में खदेड़ दिया, किन्तु उसके बाद वे अपने गणराज्य को कायम नहीं रख सके। उन्हें मौर्य साम्राज्य के अधीन होना पड़ा।

यह प्रदेश अभी नया-नया ही मौर्य साम्राज्य का हिस्सा बना था। वहां के लोगों के मन पर अभी भी पुराने जनपदों या गणराज्यों की स्वतंत्र सत्ता की छाप कायम थी जिसे वे भुला नहीं पाए थे। इसी कारण वहां की जनता अवसर पाकर विद्रोह का झंडा खड़ा कर देती थी।

उपराज अशोक दोनों बच्चों को लेकर पाटलिपुत्र पहुंचा तो उसे देखकर सम्राट बिंदुसार और रानी सुभद्रांगी को अपार आनन्द हुआ। अशोक को सामने देख सम्राट ने आज्ञा दी-

"कुमार, जाओ और तक्षशिला का विद्रोह शांत करो।"

अशोक और उसके साथी कई दिनों की यात्रा के उपरांत तक्षशिला पहुंचे। अशोक के आने की सूचना मिली तो तक्षशिला नगर के निवासियों ने दूर-दूर तक तक्षशिला के राज-मार्ग को अच्छी तरह सजाया। पानी से भरे हुए घड़े लेकर उन्होंने उपराज अशोक का स्वागत किया। तत्पश्चात नगरवासियों ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया -

"तक्षशिला के नागरिक आपके या सम्राट के विरोधी नहीं हैं और न राजद्रोही हैं, किन्तु दुष्ट अमात्य ने तक्षशिला के नागरिकों पर बहुत अत्याचार किए हैं और उनको अपमानित किया है। हम शांति के साथ-साथ तक्षशिला के लिए योग्य शासक चाहते हैं।"

वे उपराज अशोक की अगवानी कर बड़े सत्कार के साथ उसे नगर में लिवा ले गए।

अशोक के वहां पहुंचने भर की देरी थी कि तक्षशिला में पूर्ण शांति स्थापित हो गई। उसने वहां की जनता का हृदय जीत लिया। इससे पहले अशोक का बड़ा भाई सुसीम वहां का शासक था। तब भी इसी प्रकार विद्रोह हुआ था। उसे शांत करने में सुसीम असफल रहा था। अशोक एक कुशल राजनीतिज्ञ था। शायद जनता इस बात को भली प्रकार जानती थी। यही कारण रहा कि तक्षशिला के लोगों ने उसका स्वागत किया।

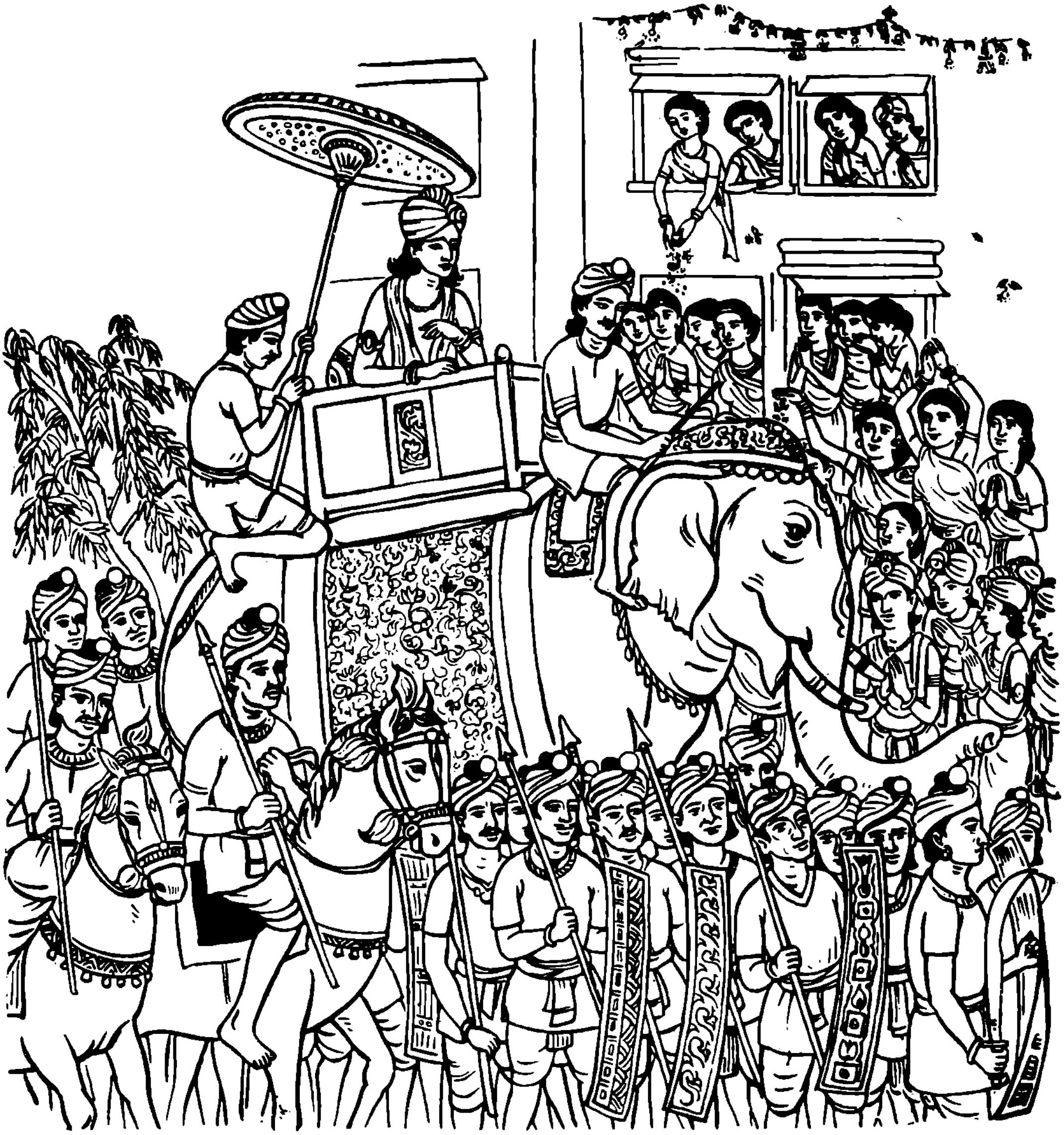

अशोक के आने की सूचना मिली तो तक्षशिला नगर के निवासियों ने दूर तक तक्षशिला के राज-मार्ग को अच्छी तरह सजाया।

अशोक तक्षशिला में बहुत दिन तक नहीं रहा। तक्षशिला में शांति स्थापित कर वह पाटलिपुत्र लौट आया। वह पाटलिपुत्र भी अधिक नहीं रुका। कुछ ही दिन राजधानी में विश्राम कर विदिशा से रानी देवी को साथ ले वह उज्जैन पहुंचा और राजकार्य में लग गया।

सम्राट बिंदुसार की मृत्यु

मौर्य साम्राज्य के दूसरे प्रतापी शासक, सम्राट बिंदुसार मरणासन्न थे। उस अवस्था में न सुसीम उनके पास था और न ही अशोक। अंतिम सांस लेने से पहले सम्राट अपना राज-मुकुट सुसीम के सिर पर रखना चाहते थे। वे उसी को सम्राट बनाना चाहते थे। उस समय सुसीम सुदूर कश्मीर में था। यदि अमात्यगण चाहते, तो उसको बुला भेजते किन्तु वे चाहते थे कि अशोक ही सम्राट बने। इसलिए उन्होंने अशोक को उज्जैन से तुरंत पाटलिपुत्र आने का संदेश भेजा। अशोक जरा भी विलंब किए बिना राजधानी आ पहुंचा।

अंतिम समय समीप आया देख राजा बिंदुसार ने चारों ओर देखा। उन्हें अशोक ही दिखाई दिया। सुसीम का कहीं पता नहीं। सम्राट बिंदुसार ने अपने सिर का राजमुकुट उतारा और अशोक के सिर पर रखा। ई० पू० 273 में यह घटना हुई और अशोक संपूर्ण मौर्य साम्राज्य के सम्राट घोषित हुए।

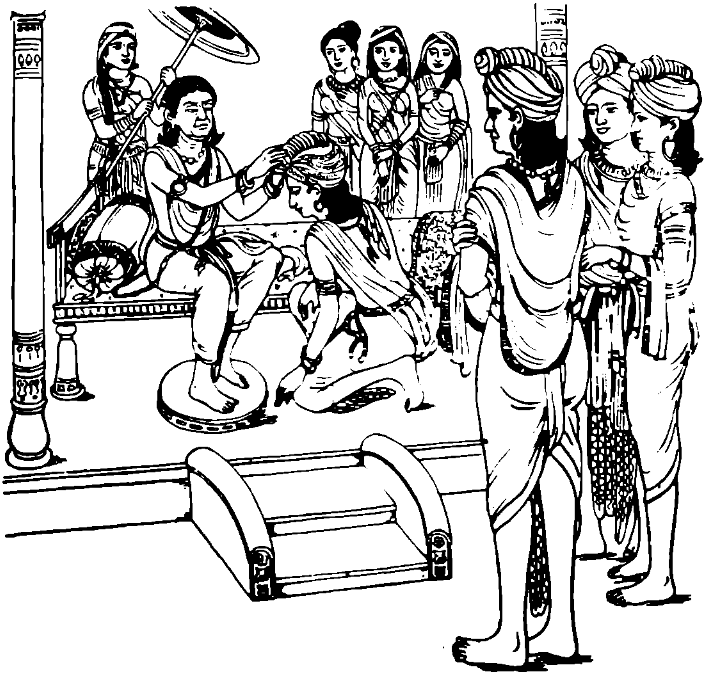

सम्राट बिंदुसार ने अपने सिर का राजमुकुट उतारा और अशोक के सिर पर रखा।

सम्राट बिंदुसार की इच्छा के विपरीत राज्य के सभी अमात्यों के प्रयत्न से अशोक को सम्राट का पद प्राप्त हुआ। अवंती और तक्षशिला में मिली सफलता से राज्य के अधिकारी उनसे प्रभावित थे। उनको अशोक की सामर्थ्य और शक्ति पर विश्वास था। इसी कारण उन्होंने सुसीम को न बुलाकर अशोक को बुला भेजा था।

उधर कुमार सुसीम को पिता के देहांत और पाटलिपुत्र में हुई उथल-पुथल का समाचार मिला। उसके पास जितनी भी सेना थी, वह उसे लेकर तुरंत पाटलिपुत्र की ओर रवाना हुआ। अशोक ने पहले से पाटलिपुत्र पर पूर्ण अधिकार जमा लिया था।

सुसीम के पाटलिपुत्र पहुंचने से पहले ही अशोक मुकाबले की सारी तैयारी कर चुके थे। जब कुमार सुसीम, पाटलिपुत्र के समीप पहुंचा तो प्रधान अमात्य राधागुप्त ने उसे संदेश भेजा -

"कुमार ! यदि तुम अशोक को हराने की सामर्थ्य रखते हो तभी राज्य प्राप्त कर सकोगे, अन्यथा नहीं।"

अशोक उज्जैन के शासक रह चुके थे, इसलिए दक्षिण की सारी शक्तिशाली सेना उनके अधीन थी। इसके अलावा पाटलिपुत्र की सेना पर भी उन्हीं का प्रभुत्व था।

जिस प्रकार कुमार सुसीम तक्षशिला एवं कश्मीर के विद्रोह को शांत करने में असफल रहा था उसी प्रकार वह राजगद्दी प्राप्त करने में भी असफल रहा।

राज्याभिषेक

उत्तराधिकार प्राप्त करते ही ज्येष्ठ भाई सुसीम के साथ संघर्ष करना पड़ेगा, यह बात अशोक पहले से जानते थे। अत: उन्होंने सब प्रकार तैयारी कर रखी थी।

सुसीम जब पाटलिपुत्र पहुंचा तो उसे नगर के प्रवेश द्वार पर ही अशोक के सैनिकों से जूझना पड़ा। उसके पास बहुत थोड़ी सेना थी। अशोक के सैनिकों के सामने वह अधिक देर तक नहीं टिक सका। अंत में सुसीम को हार माननी पड़ी। इसी गृहयुद्ध में वह अशोक के द्वारा मारा गया।

पुरानी कथाओं में कहा गया है कि सम्राट बिंदुसार की अन्य रानियों से उत्पन्न अशोक के सौ भाई थे। जो भाई सुसीम के साथी थे, उनमें से ज्यादातर अशोक के द्वारा मारे गए। जो भाई अशोक के साथ थे उनका बाल भी बांका नहीं हुआ। इतिहास के विद्वानों के अनुसार पुरानी कथाओं में बिंदुसार के पुत्रों की संख्या बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई है। वास्तव में उसके इतने पुत्र न थे।

सुसीम की मृत्यु के समय उसकी रानी सुमना देवी गर्भवती थी। वह भागकर गरीबों की बस्ती में चली गई। वहां एक न्यग्रोध (वट) वृक्ष के नीचे उसने एक पुत्र को जन्म दिया। न्यग्रोध वृक्ष के नीचे जन्म लेने के कारण उस बालक का नाम न्यग्रोध कुमार रखा गया।

एक दिन उस गांव के चौधरी ने सुमना देवी को देखा। उसने देवी को पहचाना। वह माता-पुत्र दोनों को अपने घर ले गया। सात साल तक दोनों की सेवा की।

एक दिन महावरुण नामक बौद्ध भिक्षु ने न्यग्रोध कुमार को देखा। उसने कुमार की माता सुमना देवी से आज्ञा ले कर उसे प्रव्रजित किया (भिक्षु बनाया)। बाद में इसी न्यग्रोध श्रामणेर का उपदेश सुनकर सम्राट अशोक की बौद्ध धर्म में आस्था हुई।

सम्राट बिंदुसार की मृत्यु के समय अशोक की उम्र 21 साल की थी। वैसे तो वे उसी समय मौर्य साम्राज्य के सम्राट बन गए थे। किन्तु अभी उनका विधिवत राज्याभिषेक नहीं हुआ था। चार साल बाद उनका विधिवत अभिषेक (ई० पू० 268) हुआ और तभी से उनका शासन-काल गिना जाने लगा।

जिस प्रकार पाटलिपुत्र में अशोक ने अपने भाइयों से घमासान युद्ध कर विजय प्राप्त की, उसी तरह राज्य के विभिन्न भागों में बिखरे हुए अपने विरोधियों से भी संघर्ष करना पड़ा। इसमें उन्हें चार वर्ष लग गए। यही कारण था कि उन्होंने सम्राट बन जाने के भी चार वर्ष बाद अपना राज्याभिषेक कराया। उस समय तक उनके विरोधी खत्म हो चुके थे। अपने विरोधियों को समाप्त करने की चारित्रिक विशेषताओं के कारण ही चण्डाशोक के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कलिंग विजय

अशोक बड़े ही महत्वाकांक्षी सम्राट थे। उनकी साम्राज्य-विस्तार की नीति उनके पूर्वजो के समान ही थी। उन्होंने विदेशी शासकों के साथ मित्रता बनाए रखी। विदेशों के राजदूत पहले की ही तरह पाटलिपुत्र दरबार में आते रहे।

सम्राट अशोक ने उन प्रदेशों को मौर्य साम्राज्य में मिलाने का प्रयत्न किया जो अभी तक पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से स्वतंत्र थे। गद्दी पर बैठने के बाद सर्वप्रथम अशोक का ध्यान कश्मीर पर गया। चंद्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार के समय में कश्मीर पूर्ण रूप से मौर्य साम्राज्य के अधीन नहीं हो पाया था। अशोक ने कश्मीर पर आक्रमण किया और उसे अपने साम्राज्य में मिलाकर उस पर अपनी पूर्ण सत्ता स्थापित की।

कश्मीर के इतिहास में अशोक को मौर्य वंश का प्रथम सम्राट कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि कश्मीर की विजय का श्रेय अशोक को ही है।

कलिंग युद्ध

मौर्य साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ गया था। किन्तु अभी भी उसका पड़ोसी कलिंग(ओड़िसा) राज्य स्वतंत्र चला आ रहा था। कलिंग राज्य भारत के किनारे पर महानदी, गोदावरी और कृष्णा नदी के बीच का प्रदेश था। उसकी पूर्वी सीमा पर बंगाल की खाड़ी और शेष तीनों ओर से मौर्य साम्राज्य की सीमाएं थी। बिंदुसार ने अपने समय में कलिंग को अपनी सेनाओं से तीनों तरफ से घेर लिया था, फिर भी कलिंग को वह पराजित नहीं कर सका।

कलिंग धन-धान्य से भरा एक समृद्ध राज्य था। बर्मा और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ उसके व्यापारिक संबंध थे। हाथी दांत के सामान के लिए भी कलिंग प्रसिद्ध था। वहां हाथी बड़ी संख्या में हुआ करते थे। उस समय के युद्धों में हाथी बहुत काम आते थे। जिस समय अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया, उस वक्त उसके पास 60,000 पैदल सेना, 1,000 घुड़सवार तथा 700 हाथी थे। योद्धा हाथी पर बैठकर तीर-धनुष और भालों से लड़ते थे।

राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में अशोक ने कलिंग पर विजय पाने का निश्चय किया और विशाल सेना लेकर उस पर आक्रमण कर दिया। अशोक की सेना से कलिंग चारों ओर से घिर गया। कलिंग की सेना और जनता ने मौर्य सेना का वीरता से सामना किया। अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए कलिंग के वीर सैनिक आखिरी घड़ी तक उत्साह के साथ लड़ते ही रहे।

इस युद्ध में सम्राट अशोक की विजय हुई ओर कलिंग की पराजय। इस प्रकार कलिंग भी मौर्य साम्राज्य का एक अंग बन गया।

इस घमासान युद्ध में जन-हानि और धन-हानि दोनों ही काफी मात्रा में हुई। माताओं के पुत्र मारे गये,पत्नियों के पति नहीं रहे और बच्चों के पिता परलोक सिधार गए। जो लोग लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए वे उन जीवित लोगों से अच्छे ही रहे, जिनको रहने के लिए घर, खाने को अन्न और पहनने को वस्त्रों का अभाव हो गया। घायल लोगों की हालत और भी दयनीय थी। वे तन और मन दोनों से आहत हुए थे।

यह कलिंग-युद्ध अशोक के जीवन का अंतिम संग्राम था। इस युद्ध में बड़ी संख्या में लोग मौर्य-सैनिकों द्वारा बंदी बनाकर ले जाए गए और उससे कहीं अधिक घायल होकर भूख तथा बीमारी से मरे।

अशोक के हृदय पर इस युद्ध की विभीषिका का गहरा प्रभाव पड़ा

अशोक के हृदय पर इस युद्ध की विभीषिका का गहरा प्रभाव पड़ा। इससे उस कठोर-हृदय सम्राट का जीवन ही बदल गया। वह युद्ध मानो एक ज्वालामुखी का फट प्रड़ना था। माताओं और बच्चों की दर्द भरी चीत्कारें, अशोक के कानों में गूंजने लगीं। सोते-जागते उन्हें युद्ध की विभीषिका ही दिखाई देने लगी। सम्राट अशोक बेचैन हो उठे। उनके मन में किसी भी प्रकार की शांति नहीं रही। कलिंग पर विजय प्राप्त करने के बावजूद अशोक को लग रहा था मानो वह इस युद्ध में बुरी तरह हार गए हैं।

धर्म दीक्षा

यह आप जानते ही हैं कि अशोक का सौतेला भाई सुसीम युद्ध में अशोक द्वारा मारा गया था और सुसीम के पुत्र न्यग्रोध कुमार ने बौद्धश्रमण की दीक्षा ली थी। न्यग्रोध श्रामणेर एक दिन हाथ में भिक्षा पात्र लिए भिक्षाटन के उद्देश्य से शांत भाव से सम्राट अशोक के महल के सामने से गुजर रहा था। उस समय अशोक खिड़की के पास बैठे महामार्ग पर नजर जमाए थे। उनका मन अशांत था, और वह शांति की खोज में थे। उन्होंने शांत भाव से चले जा रहे उस श्रमण को देखा। सम्राट के हृदय में उसके प्रति प्रेम उमड़ आया। अशोक के मेघाच्छन्न हृदय पर मानो प्रकाश की बिजली कौंध गई। प्रेमाकुल होकर उन्होंने उस श्रामणेर को पास बुलाया और विनम्रता पूर्वक कहा--

"भंते ! उचित आसन ग्रहण करें।"

श्रामणेर राजसिंहासन की ओर बढ़ा। उसकी निर्भयता देख सम्राट को बहुत आश्चर्य हुआ। श्रामणेर के प्रति उनके मन में अपनत्व की भावना जाग्रत हुई। वह सिंहासन के पास पहुंचा तो सम्राट अशोक ने कहा, "यह श्रामणेर मेरे हृदय सिंहासन पर आसीन होकर रहेगा।"

अशोक के हाथ का सहारा लेकर वह सिंहासन पर चढ़ा और श्वेत छत्र के नीचे विराजमान हुआ। उसे राजगद्दी पर बैठे देख अशोक को बड़ा संतोष प्राप्त हुआ। उन्होंने श्रामणेर का आदर-सत्कार किया। अपने लिए बने भोजन में से उसे भोजन कराया।

भोजन कर चुकने पर अशोक ने भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म के संबंध में कुछ प्रश्न पूछे। उत्तर में न्यग्रोध श्रामणेर ने अप्पमाद-वग्ग(अप्रमाद वर्ग,धम्मपद) का उपदेश दिया। उसे सुनकर अशोक ने उसी समय बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करने का संकल्प लिया।

न्यग्रोध श्रामणेर चलने के लिए उठा तो अशोक ने कहा--

"तात ! आठ भात (आठ जनों का भोजन) देता हूं।"

श्रामणेर ने कहा--"मैं उसे अपने उपाध्याय को समर्पित करता हूं।"

अशोक ने पुन: कहा--"मैं फिर आठ भात देता हूं।"

श्रामणेर बोला--"मैं उसे अपने आचार्य को अर्पण करता हूं।"

"मैं और आठ भात देता हूं।"

"मैं उसे भी भिक्षु संघ को समर्पित करता हूं।"

सम्राट ने फिर आठ जनों का भोजन स्वीकार करने को कहा।

बुद्धिमान श्रामणेर ने उसे स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन दोपहर के भोजन के समय बत्तीस भिक्षुओं को साथ लिए श्रामणेर राजमहल पहुंचा। सम्राट अशोक ने अपने हाथों से सबको भोजन परोसा। भोजन के उपरांत धर्म उपदेश हुआ, जिसके बाद अशोक ने अपने परिवार सहित बुद्ध धर्म की शरण ग्रहण की। उसी दिन सम्राट अशोक ने प्रतिज्ञा की--

"मैं आज से शस्त्र द्वारा विजय प्राप्त न कर, दया, शांति और अहिंसा के द्वारा विजय प्राप्त करूंगा।"

सम्राट अशोक ने हमेशा के लिए शस्त्रों का त्याग कर दिया। ऐसे राजा तो बहुत मिलेंगे जो पराजित होने के कारण युद्ध से विमुख हो गए लेकिन संसार के इतिहास में ऐसा दूसरा शासक नहीं मिलेगा, जिसने युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद युद्ध का त्याग किया हो।

जिस दिन अशोक ने प्रतिज्ञा करके शस्त्रों का त्याग किया, वह दिन धर्म-विजय के नाम से मनाया जाने लगा। अनेक बौद्ध उसे विजयादशमी कहते हैं। आज भी भारतीय बौद्ध प्रतिवर्ष विजयादशमी मनाते हैं।

इसके बाद चंडाशोक, धर्माशोक के नाम से अमर हुए। उन्हें देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी अशोक की उपाधि मिली।

इतिहास प्रसिद्ध महास्थविर मोग्गलिपुत्र तिष्य अशोक के गुरु थे। अशोक ने उनसे बौद्ध-धर्म का ज्ञान प्राप्त किया।

मौर्य साम्राज्य का विस्तार

कलिंग-विजय के पश्चात् मौर्य साम्राज्य अपने विकास की चरम सीमा पर पहुंचा। इसके बाद सम्राट अशोक ने अन्य किसी भी राज्य पर आक्रमण नहीं किया। अब उन्हें अपना साम्राज्य बढ़ाने की तनिक भी कामना नहीं थी। युद्ध से उनका मन ऊब चुका था।

कलिंग के आस-पास बहुत सी जंगली जातियां रहती थीं। उन्हें काबू में लाने के लिए सम्राट अशोक के राज-कर्मचारियों ने जब आज्ञा मांगी तो उन्होंने आदेश दिया कि उन्हें धर्म-मार्ग से ही वश में किया जाए।

अशोक का मौर्य साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में हिंदुकुश तक फैला हुआ था। अशोक के पितामह को सैल्यूकस निकेटर द्वारा दिए गए चारों प्रांतों पर अब उसी का शासन था। दक्षिणी अफगानिस्तान और सीमा प्रदेश की भूमि अशोक के साम्राज्य में बनी रही। कश्मीर भी अशोक के राज्य में ही था। कश्मीर में श्रीनगर अशोक का ही बनवाया हुआ नगर है।

दक्षिण-पश्चिमी भारत में सौराष्ट्र (गुजरात) पर भी अशोक का ही शासन था अर्थात् समुद्र तक उनका राज्य था।

उत्तर में अशोक की सत्ता हिमालय पर्वत तक फैली हुई थी। आज के नेपाल की भूमि उनके साम्राज्य में शामिल थी। कहा जाता है कि वहां सम्राट ने ललितपुर नाम का नगर बसाया था जो आज भी विद्यमान है। अशोक के बनवाए स्तूप एवं विहार भी वहां मिलते हैं। वहां स्वयं सम्राट अशोक अपनी पुत्री चारुमति तथा जामाता देवपाल के साथ गए थे। आज उस नगर को पाटन भी कहते हैं।

उत्तर-पूर्व में उनके राज्य में सम्पूर्ण बंगाल सम्मिलित था। पूर्व में समुद्र तट तक उन्हीं का प्रभुत्व था। दक्षिणी में मद्रास राज्य तथा मैसूर राज्य के भाग भी उनके साम्राज्य में थे। वास्तव में सम्राट अशोक का साम्राज्य बहुत ही विशाल था। अशोक से पहले और बाद का कोई भी सम्राट इतने विस्तृत साम्राज्य का स्वामी नहीं बना।

अशोक के शिलालेख

शिला कहते हैं पत्थर की चट्टान को और लेख कहते हैं किसी भी लिखित सामग्री को । और लेख शब्दों को मिलाकर एक शब्द बना शिलालेख, अर्थात शिलाओं पर लिखे लेख । इस प्रकार के शिलालेख सम्राट अशोक ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य में बड़ी-बड़ी चट्टानों पत्थरों के स्तंभों पर खुदवाए थे ।

इतिहास की दृष्टि से अशोक के शिलालेखों का महत्व बहुत अधिक है । इन शिलालेख के आधार पर उस समय की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति का सही-ज्ञान प्राप्त करते हैं । इनकी सहायता से हमे अशोक के जीवन संबंधी बहुत-सी बातों की जानकारी मिलती है और अशोक के साम्राज्य की सीमाओं के बारे में सही जानकारी मिलती है । इन्हीं हम यह भी जान लेते हैं कि सुदूर दक्षिण के प्रदेशों को छोड़ शेष भारतवर्ष उनके अधिकार में था इनसे यह भी पता चलता है कि विदेशी राजाओं के साथ अशोक के संबंध किस प्रकार के रहे

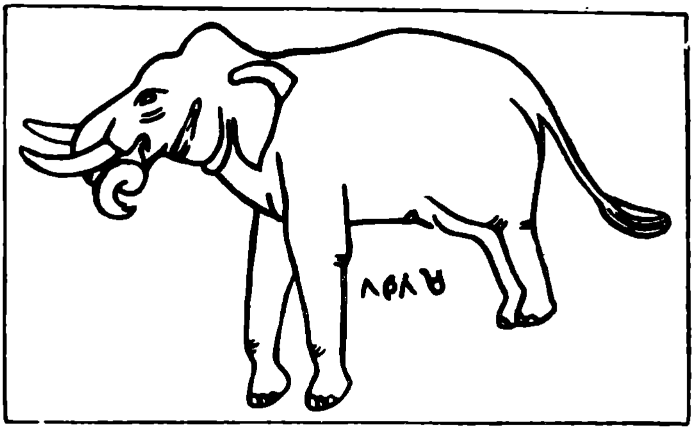

कालसी की चट्टान पर खुदी हुई हाथी की आकृति (गजोत्तम)

इन शिलालेखों ने सम्राट अशोक की धार्मिक नीति को स्पष्ट किया है । इनसे पता चलता है कि धर्म के बारे में अशोक के क्या विचार थे । इन लेखों द्वारा अशोक की राजाज्ञाएं प्रचारित हुई हैं । इनसे अशोक के चरित्र और कार्यपद्धति पर भी प्रकाश पड़ता है । हमें इन शिलालेखों द्वारा यह भी मालूम होता है कि अशोक के राज्य का शासन किस तरीके से होता था ।

इन शिलालेखों द्वारा ही सम्राट की आज्ञाएं और धार्मिक एवं नैतिक शिक्षाएं जनसाधारण में प्रचारित की जा सकीं। इस युग में छापेखाने नहीं थे। अशोक ने अपनी समस्त आज्ञाओं को इन शिलालेखों पर ही अंकित कराया ।

इन शिलालेखों में मनुष्य के सामान्य कर्तव्यों तथा आवश्यक धार्मिक सिद्धांतों का समावेश हुआ है। अमुक आदमी का अमुक आदमी के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए, यह इन शिलालेखों तथा स्तंभ लेखों में स्पष्ट रूप से बताया गया है। जैसे, पिता को पुत्र के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए या पुत्र को पिता के साथ किस प्रकार का बर्ताव करना चाहिए अथवा पति और पत्नी को एक-दूसरे के प्रति क्या व्यवहार करना चाहिए। थोड़े में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि उनमें मानव धर्म और बौद्ध धर्म का निचोड़ या सार उत्कीर्ण किया गया है।

अब तक अशोक के जितने भी शिलालेख मिले हैं, उन्हें विद्वान लोग तिथि-क्रम के अनुसार आठ भागों में बांटते हैं।

1- लघु शिलालेख : ये छोटे अभिलेख 12 स्थानों से मिले हैं। गुजरा और मास्की वाले लेखें पर अशोक का नाम भी खुदा हुआ है। दूसरे लेखों में नाम न लेकर केवल देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी ही लिखा है।

2- भबरू शिलालेख : यह वैराट जयपुर में मिला है।

3- चतुर्दश शिलालेख : ये लगभग 253 ई०पू० में लिखे गए थे। चौदह प्रज्ञापन होने के कारण ये चतुर्दश शिलालेख कहलाते हैं। ये आठ स्थानों से मिले हैं।

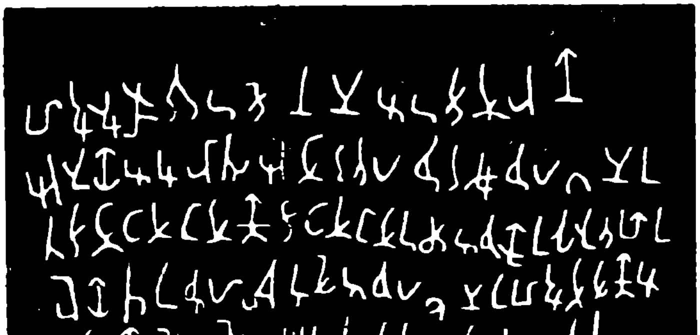

अशोक का धर्मलेख (शाहबाज गढ़ी)

4- कलिंग लेख : ये दो शिलाओं पर मिले हैं। ये भी 253 ई०पू० के ही माने जाते हैं।

5- गुहा लेख : ये बिहार राज्य के गया जिले की बराबर पहाड़ी गुफाओं में उत्कीर्ण हैं। इनका समय 257 ई०पू० से 250 ई०पू० है।

6- तराई स्तंभ लेख : ये नेपाल के लुंबिनी और निलीव ग्राम से मिले हैं। इनका समय 249 ई०पू० का माना जाता है।

7- स्तंभ लेख : ये छह स्थानों पर पाये गये हैं। इनके निर्माण का समय 243 - 242 ई०पू० का बताया जाता है।

8- लघु स्तंभ लेख : ये संख्या में चार हैं और सारनाथ, सांची तथा प्रयाग से मिले हैं। इनका समय 242 ई०पू० से 232 ई०पू० तक निर्धारित किया गया है।

धर्म को प्रमुख मानकर ही अशोक ने इन शिलालेखों को लिपिबद्ध कराया था, इसीलिए ये धर्म लेख भी कहलाते हैं। तीन शिलालेखों को छोड़ शेष सभी की भाषा मागधी या पालि है। यह भाषा उस समय की जनसाधारण की बोलचाल की भाषा थी।

जिस लिपि में अशोक के ये शिलालेख खुदवाये गए हैं, उसे ब्राह्मी लिपि कहते हैं। यह लिपि कहीं बाहर से नही आई। भारतवर्ष में ही पुराने भारतीय आर्यों द्वारा इसका आविष्कार हुआ है। अशोक के समय में इसका बहुत कुछ विकास हो चुका था। इसी ब्राह्मी लिपि से हमारी आज की देवनागरी (हिन्दी की लिपि) बनी है। इसी प्रकार यही लिपि समस्त भारत की भाषाओं की लिपि और सिंहल द्वीप की भाषा की लिपि की भी जननी है। नीचे दिए गए ब्राह्मी-अक्षरों से यह बात स्पष्ट होगी कि उससे देवनागरी लिपि का विकास कैसे हुआ है।

अ =

क =

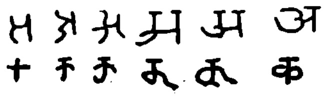

इसी प्रकार दूसरे अक्षरों और उनकी मात्राओं का भी विकास हुआ। इनको विकसित होने में बहुत वर्ष लगे। धीरे-धीरे हमें आज की हिंदी की वर्णमाला प्राप्त हुई।

धर्मयात्राएं

सम्राट अशोक एवं उनके पूर्वजों ने अपने आरंभिक जीवन में आक्रमणों द्वारा राज्य विस्तार किया था। किन्तु बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद सम्राट अशोक ने 'धर्म विजय के लिए' धर्म-यात्रा शुरू की।

धर्म-विजय के लिए अशोक ने सबसे पहले अपनी प्रजा के जीवन में सुधार किया। भारत में यज्ञों के नाम पर जो पशु-हिंसा प्रचलित थी, सम्राट अशोक ने उसे बंद किया। अशोक ने लोगों की सुविधा के लिए अपने संपूर्ण राज्य में सडकों के दोनों ओर पेड़ लगवाए जगह-जगह कुएं खुदवाए और औषधालय खुलवाए।

अशोक ने धार्मिक त्यौहारों, पूर्णिमा, अमावस्या व अष्टमी के दिन पशुओं को मारने, मछली पकड़ने तथा जानवरों को दागने की मनाही करवाई। इन सब आदेशों का प्रयोजन यही था कि व्यर्थ में हिंसा न की जाए और लोग दया और अहिंसा अपनाएं। सम्राट अशोक अपने सारे राज्य को एक धर्मनिष्ठ राज्य के रूप में देखना चाहते थे।

इस धर्म-विजय के लिए अशोक ने धर्म-यात्राएं आरंभ कीं। यात्राएं तो पहले के सम्राटों ने भी की थीं, किंतु उन यात्राओं का अभिप्राय होता था-आनंद मनाना तथा मौज करना। धर्म-यात्राओं में शिकार आदि खेलने में व्यर्थ समय न गंवाकर श्रमणों, ब्राह्मणों और वृद्धों से भेंट की जाती थी तथा उन्हें दान दिया जाता था और जनता को धर्म की बातें बताई जाती थीं। अशोक को इस प्रकार की धर्म-यात्राओं से बहुत आनंद मिलता था। इससे उन्हें अपनी आंखों से जनता का हाल देखने का भी मौका मिलता था।

अशोक की धर्म-यात्राएं राज्याभिषेक के बीसवें वर्ष (ई०पू० 248) में आरंभ हुईं। इन यात्राओं में उनके साथ उनके सामंत, अमात्य, हाथी, घोड़े, मूर्तिकार तथा अन्य विद्याओं के जानकार रहते। सम्राट की रानियां, पुत्र तथा रिश्तेदार भी इन यात्राओं में उनके साथ हुआ करते। यह यात्रा एक प्रकार की तीर्थयात्रा हुआ करती थी।

अशोक अपने गुरु मोग्गलिपुत्र तिष्य के उपदेशानुसार, आचार्य उपगुप्त के मार्गदर्शन में सर्वप्रथम भगवान बुद्ध के जन्म-स्थान लुंबिनी गए। अशोक ने भगवान बुद्ध के जन्म-स्थान की पूजा की और एक शिला-स्तंभ पर अभिलेख खुदवाया, जिसमें कहा गया--

"देवताओं के प्रिय राजा ने राज्याभिषेक के बीस वर्ष बाद स्वयं आकर इस स्थान की पूजा की। यहीं शाक्य मुनि बुद्ध का जन्म हुआ था। इसलिए यहां पत्थर का एक विशाल स्तंभ और एक बड़ी दीवार खड़ी की गई।" लुंबिनी में सम्राट ने बहुत दान-पुण्य किया और उस गांव का कर माफ कर दिया।

लुंबिनी से अशोक कपिलवस्तु गए। वह भगवान बुद्ध के पिता राजा शुद्धोदन के राज्य की राजधानी थी। कपिलवस्तु में ही सिद्धार्थ गौतम का बचपन बीता था।

वहां से अशोक ने बोधगया को प्रस्थान किया। यह स्थान गया शहर के पास ही है। वहा सम्राट ने बोधिवृक्ष की पूजा की। इसी वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ गौतम को ज्ञान प्राप्त हुआ था। इसके बाद से ही वे बुद्ध कहलाए।

अशोक ने बोधगया में एक भव्य विहार(मंदिर) बनवाया जो आज भी विद्यमान है। उन्होंने वहां एक लाख सुवर्ण मुद्राएं दान दी थीं।

आचार्य उपगुप्त सम्राट को बुद्धगया से सारनाथ (बनारस) ले गए। सारनाथ बनारस से छह मील पर है। बुद्धत्व प्राप्ति के उपरान्त भगवान बुद्ध ने इसी सारनाथ में वट-वृक्ष के नीचे बैठ सर्वप्रथम पांच भिक्षुओं को धर्मोपदेश दिया था। वह उपदेश धर्म-चक्र प्रवर्तन के नाम से प्रसिद्ध है और वह दिन धर्मचक्र-प्रवर्तन दिवस के नाम से मनाया जाता है। उसी दिन भगवान बुद्ध ने एक नए धर्म का चक्र चलाया था। सम्राट ने यहां भी बहुत से ऐतिहासिक कार्य किए। स्तूप तथा विहार बनवाए। सबसे महत्व का कार्य था-एक विशाल शिला-स्तंभ को स्थापित करना।

सम्राट ने बोधिवृक्ष की पूजा की। इसी वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ गौतम को ज्ञान प्राप्त हुआ था

उस शिला-स्तंभ पर उन्होंने एक लेख खुदवाया। उस स्तंभ के ऊपरी हिस्से पर चारों दिशाओं मे गर्जना करते चार सिंह बनवाए जो जीवित सिंहों जैसे जान पड़ते हैं। इसी स्तंभ के सिंह वाले शीर्ष-भाग को भारत सरकार की राजमुद्रा मे रखा गया है। हमारे करेंसी नोटों और सिक्कों पर भी यही छापा जाता है। ये चारों सिंह चारों दिशाओं में धर्म-गर्जना या सिंह-नाद करने वाले भगवान बुद्ध के प्रतीक हैं। स्तंभ के सिंह के नीचे का धर्म-चक्र, अशोक-चक्र भी कहलाता है।

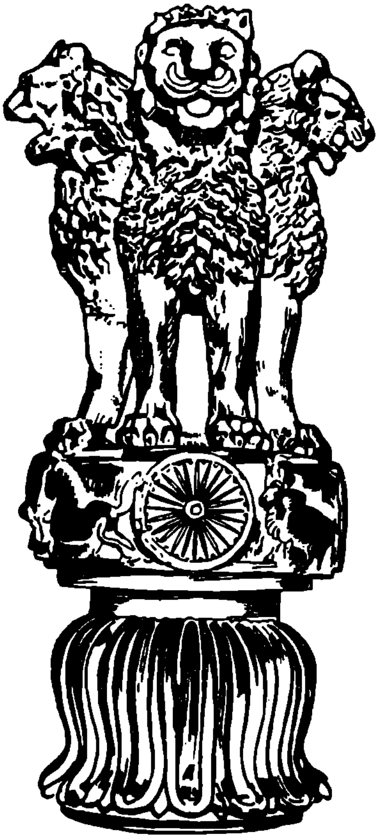

सारनाथ के विशाल शिला-स्तंभ का शीर्ष भाग। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने इसे राजमुद्रा के रूप में ग्रहण किया है।

सम्राट अशोक वहां से कुशीनगर पहुंचे। भगवान बुद्ध का जन्म लुंबिनी उद्यान में हुआ था। कपिलवस्तु में वह बड़े हुए। उन्होंने 29 वर्ष की उम्र में गृहत्याग किया तथा 6 वर्ष की साधना के पश्चात 35 वर्ष की अवस्था में बुद्ध गया में बुद्धत्व लाभ किया। सारनाथ में धर्म-चक्र प्रवर्तन हुआ। तब से 45 वर्ष तक घूम-घूम कर लोगों को उपदेश दिया और 80 वर्ष की अवस्था में कुशीनगर में वैशाख पूर्णिमा की रात को वे महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए अर्थात् उन्होंने देह त्याग दी। विश्वास किया जाता है कि वैशाख पूर्णिमा को ही भगवान बुद्ध का जन्म हुआ, वैशाख पूर्णिमा के दिन ही उन्हें बुद्धत्व का लाभ हुआ और वैशाख पूर्णिमा को ही महापरिनिर्वाण हुआ। सम्राट अशोक ने कुशीनगर में भी अनेक स्मारक बनवाए।

कुशीनगर से सम्राट श्रावस्ती (सहेट-महेट) गए। सम्राट ने यहां उन स्थानों की पूजी की जहां भगवान बुद्ध ठहरे थे। यहां भी सम्राट ने अनेक स्तूप स्मारक बनवाए। यहीं भगवान बुद्ध ने सेठ अनाथपिंडिक के जेतवनाराम और विशाखा के पूर्वाराम में पच्चीस वर्षावास (चातुर्मास) बिताए थे। वहां से वैशाली गए और वहां भी एक शिला स्तंभ खड़ा करवाया, जिसके ऊपर सिंह बना हुआ है।

कहा जाता है कि सम्राट नालंदा भी गए थे। वहां भगवान् बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत्र के चैत्य की उन्होंने पूजा की। जहां-जहां भगवान बुद्ध या उनके प्रधान शिष्यों ने चारिका की थी, सम्राट ने उन सभी स्थानों की यात्रा की तथा वहां स्तूपों, विहारों का निर्माण कराया और शिलालेख खुदवाए। जहां वह नहीं जा सके, ऐसे महत्वपूर्ण के स्थानों पर भी, उन्होंने शिलालेख स्थापित करवाए।

अशोक ने अपनी प्रजा का हृदय, उन्हें भय दिखा कर या दंड देकर नहीं जीता था अपितु शान्ति एवं दया के द्वारा ही वे उनका प्रेम पाने में सफल हुए। अशोक ने अपनी प्रजा को अपनी संतान समझा और पिता के समान उसके प्रति वात्सल्य बनाए रखा।

राज्य-व्यवस्था

पाटलिपुत्र सम्पूर्ण मौर्य साम्राज्य की राजधानी थी और अशोक उसके सम्राट। किन्तु पाटलिपुत्र से सारे राज्य का संचालन करना आसान नहीं था। इसी कारण शासन की सुविधा के लिए साम्राज्य के 6 हिस्से किए गए थे,जिन के नाम इस प्रकार हैं।

1- उत्तरापथ - इसमें कंबोज, गांधार, कश्मीर, अफगानिस्तान और पंजाब शामिल थे। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

2- पश्चिमचक्र - इस राज्य में काठियावाड, गुजरात से लेकर राजपूताना और मालवा के प्रदेश शामिल थे। इसकी राजधानी उज्जैन थी।

3- दक्षिणापथ - विंध्याचल पर्वत-माला का दक्षिण भाग जिसमें सारा महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत का कुछ हिस्सा भी शामिल था। इसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी।

4- कलिंग - सम्राट अशोक ने अपने नए जीते हुए प्रदेश को एक अलग राज्य बना रखा था, जिसकी राजधानी तोसाली थी।

5- मध्यदेश - इसमें वर्तमान बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल था। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

इन प्रदेशों का शासन संभालने के लिए प्राय: राजकुल के कुमार ही उपराज पद पर नियुक्त होकर जाते थे। वे उन राज्यों के अमात्यों की मदद से वहां की राज्य व्यवस्था देखते थे। स्वयं अशोक अपने पिता के राज्य-काल में उज्जैन के और अशोक के पुत्र कुमार कुणाल राजा बनने के पहले तक्षशिला के उपराज रह चुके थे। एक-एक राज्य में अनेक शासन-केंद्र हुआ करते थे, जिनमें कुमारों की देखरेख में महामात्र शासन करते थे। उदाहरण के लिए तोसाली के अधीन समापा में, पाटलिपुत्र के अधीन कौशांबी में और सुवर्णगिरि के अधीन इसिला में। उज्जैन के अधीन सौराष्ट्र में एक पृथक प्रदेश या परगना था। वहां का शासक यवन तुसाष्प था।

मौर्य सम्राट की ओर से जो राजाज्ञाएं जारी की जाती थीं, वे राज्यों के अमात्यों के नाम होती थीं। किंतु मध्यदेश (जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी) पर किसी कुमार या उपराज की नियुक्ति नहीं की जाती थी। वहां की शासन व्यवस्था सीधे सम्राट के हाथ में थी इसलिए इसके अंतर्गत कौशांबी के महामात्य को अशोक स्वयं ही आदेश देते थे।

जैसे आज केंद्रीय सरकार, फिर प्रादेशिक सरकार और प्रदेश में बहुत सारे जिले, तहसीलें और थाने होते हैं, वैसे ही अशोक-साम्राज्य में भी पाटलिपुत्र की केंद्रीय सरकार होती थी, फिर प्रादेशिक सरकार होती थी, और उन प्रदेशों में अनेक मंडल थे। प्रत्येक मंडल में कई जनपद शामिल थे। शासन व्यवस्था को अधिक सरल बनाने के लिए जनपदों के विविध भाग किए गए थे जिन्हें स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक, संग्रहण और ग्राम कहा जाता था। राज्य की सबसे छोटी इकाई ग्राम या गांव थी।

दस ग्रामों के समूह को संग्रहण कहते थे। बीस संग्रहणों (200 गांव) का एक खार्वटिक होता था। दो खार्वटिकों (400 ग्रामों) से एक द्रोणमुख और दो द्रोणमुखों (800 ग्रामों) से एक स्थानीय बनता था। किंतु कुछ राज्यों में आबादी घनी न होने के कारण एक स्थानीय में गांवों की संख्या कम भी होती थी।

ग्राम का अधिकारी ग्रामिक, संग्रहण का गोप और स्थानीय का स्थानिक कहलाता था। संपूर्ण जनपद के शासक को समाहर्ता (अर्थात कर इकट्ठा करने वाला कलेक्टर) कहते थे। समाहर्त्ता के ऊपर महामात्र होते थे, जो प्रदेशों के अंतर्गत विविध मंडलों का शासन करने के लिए केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते थे। इन मंडलों के महामात्रों के ऊपर कुमार और उसके अमात्य होते थे। इन सब पर मौर्य सम्राट अशोक का शासन होता था।

सम्राट की सहायता करने के लिए एक मंत्रि-परिषद होती थी। उसमें प्रधानमंत्री और पुरोहित के दो पद प्रमुख थे। चंद्रगुप्त के समय आचार्य चाणक्य मंत्री और पुरोहित दोनों पदों पर आसीन थे। अशोक के समय में राधागुप्त उक्त दोनों पदों पर थे। सम्राट इसी मंत्रिपरिषद के साथ मिलकर प्रजा की सुविधा-असुविधा जानने के लिए गुप्तचरों को नियुक्त करते थे। विदेशों में राजदूतों को नियुक्त करना और परराष्ट्र नीति का संचालन करना उन्हीं के अधीन था। शिक्षा-संबंधी कार्य भी उन्हीं के अधीन थे। राज्य के विभागों पर भी मंत्री और पुरोहित का निरीक्षण रहता था। सम्राट इन्हीं के परामर्श से अपने राज्य का कार्य चलाते।

इसी प्रकार प्रदेशों के उपराज भी महामात्रों की सहायता से शासन कार्य करते थे। उन महामात्रों की एक परिषद होती थी, वैसे ही जैसे आज की विधान परिषदें। इसी प्रकार केंद्र में भी केंद्रीय मंत्रि-परिषद होती थी।

केंद्रीय सरकार की ओर से जो राजकर्मचारी साम्राज्य में शासन के विविध पदों पर आसीन किए जाते थे, उन्हें पुरुष कहते थे। ये पुरूष उत्तम, मध्यम तथा हीन दर्जे के हुआ करते थे। जनपदों के मंडलों पर कार्य करने वाले महामात्रों और महामात्यों के अधीन जनपदों के शासक समाहर्त्ता 'उत्तम' पुरुषों की श्रेणी में होते थे। उनके अधीन युक्त आदि विभिन्न पदों के कर्मचारी 'मध्यम' तथा 'हीन' पुरुषों के वर्ग में थे।

सम्राट अशोक ने शासन व्यवस्था में अनेक सुधार किए। अपनी प्रजा के भौतिक, आध्यात्मिक

और धार्मिक कल्याण के हेतु 'धम्म-महामात्रों' की नियुक्ति की। यह पद बिल्कुल नया था। धम्म-महामात्रों की नियुक्ति राज्यों के विविध संप्रदायों के सुख-साधन और उनमें दान वितरण के प्रबंध की व्यवस्था करने के लिए की गई थी। उनके कार्यों में यह कार्य भी शामिल था कि वे संतान की देखभाल की जिम्मेदारी और बुढ़ापे जैसे कारणों के आधार पर बंदियों को मुक्त कराएं या दंड को कम कराएं और अनावश्यक यंत्रणा को रोककर न्याय की कठोरता को घटाएं।

सम्राट अशोक ने अपने सब राजकर्मचारियों के लिये पंच-वार्षिक या त्रि-वार्षिक दौरों का नियम बनाया, जिससे वे अधिकारी देहात की प्रजा के साथ संबंध बनाए रखें और यथासंभव लोगों के कष्टों को दूर कर सकें। अशोक ने एक और नई शुरुआत की वह थी 'प्रतिवेदकों' की नियुक्ति जो उसे राज्य की सारी खबर दिया करते। उन्होंने और भी कई नए विधान बनाए। सम्राट अशोक ने अपने राजुकों को, जो लाखों लोगों पर शासन करते थे, दंड के मामले में स्वतंत्र कर दिया, ताकि वे अपने कर्तव्य का पालन विश्वास और निर्भयतापूर्वक कर सकें। उनका कार्य था दंड (सजा) और व्यवहार (कानून) में समता स्थापित करना।

पाटलिपुत्र की एक नगर सभा भी थी। उसकी 9 समितियां थीं। पहली समिति शिल्प संबंधी कार्यों की देखभाल करती और श्रमिकों की मजदूरी की दर और उनके काम का समय निर्धारित करती।

दूसरी समिति विदेशियों का सत्कार करती। जो राजदूत पाटलिपुत्र आते, उनकी गतिविधियों पर कड़ी नजर रखना भी इसी समिति का कार्य था। किंतु, वह उनकी हर प्रकार की सुख-सुविधा का ध्यान करती थी।

तीसरी समिति का कार्य जनगणना करना था। वह मृत्यु और जन्म का लेखा-जोखा रखती थी।

चौथी समिति क्रय-विक्रय के नियमों को निश्चित करती। चीजों के भाव घटाना-बढ़ाना इसी का काम था।

पांचवी समिति व्यापारियों पर नजर रखती और देखती थी कि कहीं कोई नई और पुरानी वस्तुओं को मिलाकर तो नहीं बेच रहा है। हर प्रकार की मिलावट को रोकना इसका काम था।

छठी समिति क्रय-विक्रय पर कर लगाकर उसे वसूल करती थी। जो वस्तु जिस कीमत पर बेची जाती थी, उसका दसवां भाग कर के रूप में नगर-सभा को दिया जाता था।

उक्त समितियां सार्वजनिक हित के और भी कई कार्य करती थीं, जैसे सार्वजनिक इमारतों को देखना, मूल्यों पर नियंत्रण, बाजार, बंदरगाह और पूजा स्थलों की देख-रेख।

आज की तरह अशोक के शासन में भी केंद्रीय मंत्रिमंडल था। प्रत्येक मंत्री को कोई न कोई विभाग संभालना होता था। उसके अठारह तीर्थ (विभाग) थे। इनमें प्रधानमंत्री और पुरोहित भी होता था।

न्याय के लिये विविध न्यायालय थे। सबसे छोटा न्यायालय ग्राम संस्था (ग्राम संघ) होती थी। जिसे हम ग्राम पचायत कह सकते हैं। सबके ऊपर पाटलिपुत्र के धर्मस्थीय (दीवानी) और कंटकशोधक (फौजदारी) न्यायालय थे। सभी के ऊपर सम्राट थे, जो अनेक न्यायाधीशों की सहायता से किसी भी मामले का अंतिम निर्णय करने का अधिकार रखते थे।

राज्य की आय के विविध साधन थे। किसानों से उपज का एक चौथाई भाग कर के रूप में लिया जाता था। आयात माल पर कर की मात्रा बीस फीसदी थी। निर्यात माल पर भी कर लिया जाता था। सोना, चांदी, हीरा, मणि, मुक्ता, लोहा और नमक आदि सब खनिज पदार्थ राज्य की संपत्ति माने जाते थे। जो माल शहर में आता, उस पर चुंगी देनी पड़ती थी। इसी प्रकार विविध व्यवसायों पर भी कर लगता था।

राज्य के कर्मचारियों को उनके पद के अनुरूप वेतन दिया जाता । अधिक-से-अधिक वेतन की मात्रा 4000 पण थी और कम से कम 5 पण। यदि कोई राजसेवक राजसेवा करते समय मर जाता तो उसके पुत्र या पत्नी को उस व्यक्ति के वेतन का कुछ भाग नियमित रूप से मिलता रहता। सैनिकों और उनके अफसरों को भी वेतन दिया जाता था।

राज्य में शिक्षा पर जो व्यय होता था, उसे देव पूजा कहते थे। अनेक शिक्षणालयों का सीधा संचालन राज्य की ओर से होता था। उनके शिक्षकों को राज्य की ओर से वेतन दिया जाता। वह पूजा (वेतन) कहलाता था। अन्य विद्यालयों को राज्य अनुदान देता था। इसी प्रकार दान, सहायता, सार्वजनिक आमोद-प्रमोद और सार्वजनिक हित के कार्यों पर भी खर्च होता था।

अशोक के राज्य में एक गुप्तचर विभाग भी था। वह अमात्यों पर नजर रखता था। इसके अलावा राज्य के हर प्रकार के कर्मचारियों पर गुप्तचर निगरानी रखते थे।

लोगो की भावनाओं और राज्य के बारे में उनके विचारों का पता लगाना भी गुप्तचरों का ही काम होता था। वे विदेशों में भी जासूसी करते थे। ये गुप्तचर विद्यार्थी, संन्यासी, बैरागी, व्यापारी, तपस्वी आदि के वेष में फिरा करते थे। अपनी गुप्त लिपि और सांकेतिक भाषा के माध्यम से वे अपने कार्य की रिपोर्ट मुख्य कार्यालय तक पहुंचाते थे।

उस समय संदेश भेजने या मंगाने के लिये कबूतरों का उपयोग किया जाता था। कबूतरों के गले मे पत्र बांध कर उन्हें उड़ा दिया जाता। प्रशिक्षित कबूतर ठीक स्थान पर पहुंच जाते थे।

सम्राट अशोक की दृष्टि में राजा जनता का सेवक था। इसी आदर्श को सामने रखकर उन्होंने शासन किया। उन्हें इस बात की चिंता रहती कि प्रजा अधिक से अधिक सुख तथा शांति कैसे प्राप्त करे। सम्राट अशोक कलिंग के शिलालेख में कहते हैं--सभी व्यक्ति मेरी संतान हैं। जिस प्रकार मैं चाहता हूं कि मेरी संतान इस लोक और परलोक में सुख और शांति का जीवन व्यतीत करे, उसी तरह मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि मेरी प्रजा भी सुखी और समृद्ध जीवन का उपभोग करे।

व्यवसाय, व्यापार तथा खानपान

उस समय भी भारत में प्रधान व्यवसाय कृषि या खेती करना ही था । बरसात अधिक होने के कारण साल में तीन फसलें उगाई जाती थीं। चावल, तिल, मोठ आदि वर्षा ऋतु के आरभ में बोए जाते थे। वर्षा के मध्य में मूंग, उड़द आदि और बारिश खत्म होते ही मसूर, जौ, गेहूं, चना, अलसी आदि की खेती की जाती थी। इसके अलावा गन्ना, कपास और तरह-तरह की शाक सब्जियां भी उगाई जाती थीं। फलों में आम, अनार, आंवला, नींबू, बेर, अंगूर, जामुन, कटहल, तरबूज और खरबूजे आदि होते थे। खेती के लिए हल और बैलों का प्रयोग होता था। सिंचाई के विविध साधन थे।

इसके अतिरिक्त लोग विभिन्न प्रकार के धंधे भी करते थे। रुई, सूत, सन एवं ऊन के अनेक तरीके के कपड़े तैयार किए जाते थे। खानें राज्य की हुआ करती थीं पर कभी-कभी ठेके पर भी दी जाती थीं। उनमें मजदूर काम करते थे। समुद्री जल से नमक बनाया जाता था। सोने, चांदी आदि के गहने बनाए जाते थे।

वैद्य चार प्रकार के होते थे-- साधारण वैद्य, विष-वैद्य, गर्भ की बीमारियों को ठीक करने वाले और संतान-उत्पत्ति में सहायक होने वाले। इनपर राज्य का पूरा नियंत्रण रहता था।

बाजार में मांस, शराब, बर्तन तथा खाने-पीने की चीजे एवं व्यवहार में लाने की दूसरी वस्तुएं भी बेची जाती थीं। व्यापारी कितना मुनाफा कमाएं, यह राज्य की ओर से नियत किया जाता था और यह भी देखा जाता कि कहीं कोई व्यापारी माल में मिलावट तो नहीं करता। मिलावट करने वाले को दंड दिया जाता था।

व्यापार और आवागमन थल-मार्ग और जल-मार्ग दोनों से होता था। नदी, समुद्र तथा नहरों से नौकाओं द्वारा माल ले जाया जाता। सम्राट अशोक के साम्राज्य में सड़कों का जाल-सा बिछा हुआ था। पाटलिपुत्र को केंद्र बनाकर उत्तर,दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों दिशाओं में सड़कें जाती थीं। मार्गों का प्रबंध राज्य के एक विभाग के अधीन था। प्रत्येक क्रोस पर पत्थर गड़े थे। चौराहों पर मार्ग दिखने वाले चिह्न लगे रहते थे। उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रदेश से पाटलिपुत्र तक आने वाली सड़क की लंबाई 3,000 मील के लगभग कही जाती थी।

मुद्रा (सिक्कों) के नियंत्रण के लिए अलग अमात्य होता था। उसे लक्षणाध्यक्ष कहते थे। टकमान का प्रधान अधिकारी सौवर्णिक कहलाता था। सिक्के दो प्रकार के होते थे। राजकीय कर चुकाने तथा क्रय-विक्रय में काम आने वाले, जिन्हें प्रामाणिक माना जाता था। दूसरे प्रकार के

सिक्के साधारण थे जो सामान्य व्यवहार में आते थे। इनका मूल्य प्रथम प्रकार के सिक्कों पर निर्भर करता था, इन्हें व्यावहारिक कहते थे।

उस समय मांस का बहुत चलन था। मुख्य आहार चावल और गेहूं था। वह प्रधान रूप से मांस के साथ खाया जाता था। विविध प्रकार के पकवान, कच्चा मांस, पका हुआ मांस, चावल, दाल, रोटी आदि चीजें दुकानों में बिकती थी। नाचने, गाने एवं बजाने वाले तथा तरह-तरह की बोलियां बोलकर जीविका कमाने वाले भी हुआ करते थे।

पशुओं की विविध प्रकार की लड़ाइयां तथा मल्ल युद्ध देखने का भी जनता को बड़ा शौक था। सम्राट अशोक को ये समाज पसंद नहीं थे। उन्होंने इस प्रकार के खेल-तमाशे बंद करवा दिए थे।

वास्तुकला और शिल्पकला का विकास

बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित प्रत्येक स्थान पर विहार, स्तूप, शिलालेख और अन्य स्मारकों का निर्माण कराया और स्वयं सभी स्थानों की यात्रा भी की।

उस समय बौद्ध भिक्षुओं की संख्या बहुत अधिक थी। उनकी सुविधा के लिए सम्राट अशोक ने विहार बनवाए। उन्हीं के साथ-साथ स्तूप भी बनवाए। उन संघारामों में भिक्षुओं के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था भी की। साम्राज्य का कोई भाग ऐसा नहीं बचा जहां बौद्ध विहार, स्तूप और संघाराम नहीं बनवाए गए हों। उन्हीं के साथ-साथ शिलालेखों पर राजाज्ञाएं खुदवाई गईं। इनके खंडहरों से आज हमें उस समय की स्थिति का ज्ञान होता है।

भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् उनकी पवित्र अस्थियों पर विभिन्न राज्यों में दस स्तूप बनवाए गऐ थे। अशोक ने उन में से सात स्तूपों की अस्थियां निकलवाईं। कहा जाता है कि अशोक ने अपने सारे साम्राज्य में 84,000 विहार तथा उतने ही स्तूप बनवाए। सात स्तूपों से निकाली हुई अस्थियों के 84,000 हिस्से करके उन्हें उन स्तूपों में स्थापित कराया। हो सकता है कि यह संख्या बढ़ा-चढ़ाकर बताई गई हो, फिर भी अशोक ने हजारों विहार बनवाए।

सुदूर गांधार (अफगानिस्तान) में भी विहारों की संख्या कुछ कम नहीं थी। इसी प्रकार अन्य प्रदेशों में भी बहुत से विहार थे। पाटलिपुत्र में सम्राट द्वारा बनवाए गए दो संघाराम थे। एक था अशोकाराम तथा दूसरा कुक्कुटाराम। पाटलिपुत्र के आसपास विहारों की संख्या इतनी अधिक थी कि उस सारे प्रदेश को ही 'विहार' या बिहार कहा जाने लगा।

अपनी रानी विदिशा नगरी की 'देवी' के आग्रह पर अशोक ने सर्वप्रथम सांची में चैत्यगिरि पर्वत पर स्तूप तथा विहार बनवाए। वहां तीन बड़े स्तूप हैं। प्रधान चैत्य में भगवान बुद्ध की अस्थियां हैं। उसके गिर्द बनी वैष्ठनी या रेलिंग बहुत सुंदर है। चारों ओर पत्थर के ही बने चार दरवाजे हैं। उन पर भगवान बुद्ध के जीवन की कथाएं अंकित की गई हैं। उस काल में बुद्ध की मूर्ति बनाने की परंपरा नहीं थीं। जहां भगवान बुद्ध को दिखाना होता, वहां बोधिवृक्ष दिखाया जाता था। पक्के पत्थर पर उत्कीर्ण होने के कारण हम उन्हें आज भी देख रहे हैं।

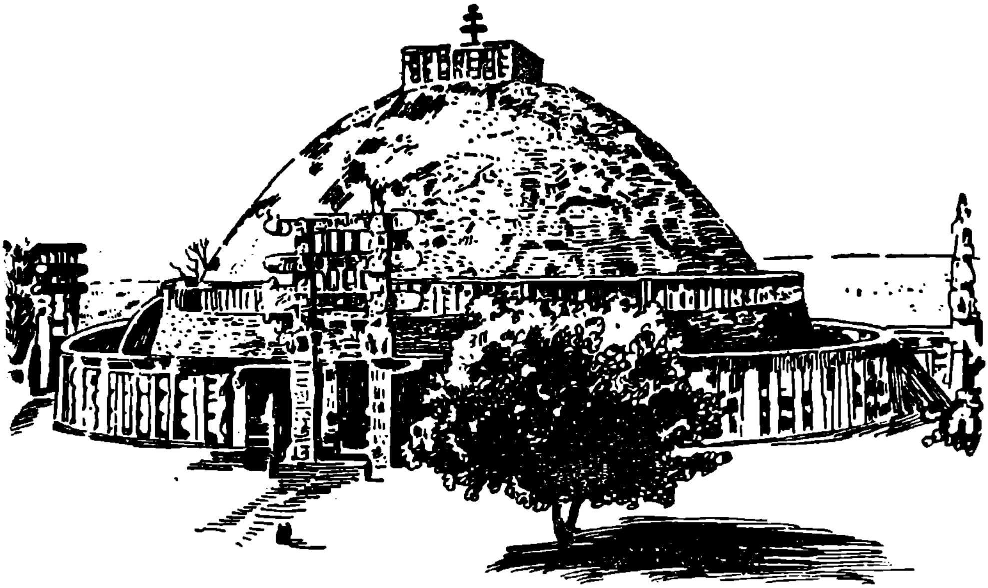

अपनी रानी विदिशा नगरी की देवी के आग्रह पर अशोक ने
सर्वप्रथम सांची के चैत्यगिरि पर्वत पर स्तूप तथा विहार बनवाए।

उसी प्रधान चैत्य के पास दूसरा चैत्य है। उसमें भगवान के प्रधान शिष्य सारिपुत्र मौद्गल्यायन की अस्थियां हैं। उससे थोड़े अंतर पर तीसरा स्तूप है। उसमें सम्राट अशोक के गुरू मोग्गलिपुत्र तिष्य की अस्थियां हैं।

इस प्रकार के स्तूपों, विहारों तथा अन्य स्मारकों द्वारा अशोक के समय में वास्तुकला और शिल्पकला का बहुत विकास हुआ। अशोक-चक्र का उल्लेख पहले किया गया है। सारनाथ के अशोक-स्तंभ पर बने सिंह और उसके निचले भाग पर बनाए गए वृषभ, हंस और अश्व उस वक्त की शिल्पकला की अति सुंदर झांकियां हैं।

सम्राट अशोक की कीर्ति, धर्मविजय के कारण ही नहीं बल्कि उनके द्वारा निर्माण कराई गई कलाकृतियों के कारण भी हैं। कश्मीर के श्रीनगर तथा नेपाल के ललितपाटन के निर्माण का श्रेय उन्हीं को दिया जाता है।

सम्राट अशोक के निर्माण-कार्यो में विशिष्ट स्थान उन विशाल स्तंभों का है, जो चुनार के पत्थरों से बने हुए हैं। वजन में वे प्राय: पचास टन के हैं। उनकी सामान्य ऊंचाई 40 से 50 फुट तक की है। वे एक ही पत्थर से बनाए गए हैं। उनके ऊपर चमचमाती पालिश इतनी अद्भुत है कि दर्शकों को अचरज में डालती हैं। इस प्रकार की पालिश बाद की किसी कलाकृति में नहीं मिलती।

सम्राट अशोक के युग के पहले की इमारतें लकड़ी की हुआ करती थीं। वैसी ही जैसी आज बर्मा में होती हैं। अशोक के समय में पत्थरों की इमारतें बननी शुरु हुईं।

स्तंभों के अलावा चट्टानों को काटकर बनाए गए सात मंदिर अशोक और उनके उत्तराधिकारियों की ही कृतियां समझे जाते हैं। उनमें से चार 'बराबर' पहाड़ी में हैं और शेष नागार्जुन पर्वत पर।

पाटलिपुत्र का राजमहल एक विशाल उद्यान में था। वहां मछलियां पकड़ने के तालाब बने थे। सजावट के लिए पेड़ लगाए गए थे। महल के खंभे सुनहरी लताओं से तथा चांदी की पत्तियों से सजाए गए थे। तीनमंजिला राजमहल लकड़ी व पत्थर का बना था।

मौर्य काल में सभी बड़े नगर ऊंची चहारदीवारी से घिरे रहते थे। उनके चारों ओर गहरी खाई खुदी होती थी जिनमें कमल के फूल खिले होते थे। शहर के चारों ओर रमणीय उद्यान होता था।

सम्राट अशोक का परिवार

कहा जाता है कि सम्राट अशोक की पांच रानियां थीं । जब वे उपराज पद ग्रहण कर उज्जैन जा रहे थे, तभी उनका विवाह विदिशा नगरी के श्रेष्ठी की पुत्री देवी के साथ हुआ। उस रानी से अशोक की महिंद और संघमित्रा, दो संतानें हुई। देवी कभी पाटलिपुत्र नहीं गई। वह शुरू से ही धार्मिक वृत्ति की थी और इसी में उसने अपना शेष जीवन बिताया। उसी के कहने से अशोक ने सांची विहार का निर्माण कराया था। असंधिमित्रा सम्राट की पटरानी थी। राज्याभिषेक के 26वें वर्ष में उसका देहांत हो गया। कालुवाकी या चारुवाकी एक और रानी थी। वह कुमार तीवलतिवर की मां थी। चौथी रानी का नाम पद्मावती था। उसने कुमार कुणाल को जन्म दिया। चारूवाकी और पद्मावती दोनों ही अपने पुत्रों के नाम से जानी जाती थीं। कुणाल तथा तिवर दोनों ही उपनाम थे। कुणाल का असली नाम धर्मवर्धन था। अमात्यों ने उसकी सुंदर आंखें देखकर उनकी तुलना हिमालय में रहने वाले कुणाल पक्षी की आंखों से की, इसलिए कुमार का उपनाम कुणाल पड़ा। जब सम्राट धर्मानुसार राज्य कर रहे थे, उसी समय कुणाल का जन्म हुआ। इसीलिए उसका नाम धर्मवर्धन रखा गया था। कहा जाता है कि कुणाल के जन्म से थोड़े ही पहले सम्राट अशोक ने 84,000 धर्मराजिक विहार बनवाए थे।

तिवर कुमार की आंखें एक शिकारी की तीक्ष्ण आंखों के समान होने के कारण उसका उपनाम तिवर या अतवर (तीव्र आंखों वाला) पडा।

असंधिमित्रा की मृत्यु के चार साल बाद सम्राट अशोक ने तिष्यरक्षिता के साथ विवाह किया और उसे पटरानी का पद प्रदान किया। वह असंधिमित्रा के जीवन काल में उसकी प्रधान परिचारिका रह चुकी थी।

कुमार कुणाल सम्राट अशोक का सबसे प्रिय पुत्र था। एक लोकश्रुति है कि सम्राट की रानी तिष्यरक्षिता उस पर मुग्ध हो गई थी। किंतु कुणाल उसे माता समान मानता रहा। इस कारण रानी कुमार से वैर करने लगी ।

लोक श्रुति के अनुसार, सम्राट अशोक एक बार बहुत बीमार हुए। रानी तिष्यरक्षिता ने उनकी बहुत सेवा की। वे उस पर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने इस खुशी में एक दिन के लिए साम्राज्य के सूत्र उसे सौंप दिए। कुणाल से बदला लेने का अवसर अब रानी को मिल गया था। वह चूकने वाली नहीं थी। उस समय कुणाल तक्षशिला के उपराज बनकर वहां का शासन संभाल रहे थे। तिष्यरक्षिता ने राजमुद्रा के साथ आदेश जारी किया कि कुणाल को तुरंत उपराज पद से हटा दिया

जाए और उसकी दोनों आंखे निकाल दी जाएं। सम्राट की आज्ञा का उल्लंघन कौन कर सकता था? राजाज्ञा का सम्मान रखने के लिए कुणाल अपने पद से हट गए और उन्होंने अपनी दोनों आंखे स्वयं अपने हाथों से निकाल दीं।

रानी के काले कारनामे का पता जब अशोक को लगा तो वह बहुत क्रोधित एवं दुःखी हुए। उन्होंने तिष्यरक्षिता को दडित किया। जिस स्थान पर कुमार ने अपनी आंखें निकाली थीं, उसी जगह सम्राट ने एक बड़ा स्तूप बनवाया। यह स्तूप तक्षशिला के दक्षिण-पूर्व में था।

अशोक का एक भाई था जो उपराज पद पर नियुक्त था। उसने बाद में बौद्ध भिक्षु की दीक्षा ली। उसी के साथ संघमित्रा का पति अग्निब्रह्मा भी भिक्षु बना था। उसकी दीक्षा के कुछ ही रोज पहले संघमित्रा के एक पुत्र हुआ जिसका नाम सुमन कुमार रखा गया था। बाद में महिंद, संघमित्रा और सुमन कुमार भी भिक्षु हो गए थे।

बौद्ध धर्म की तीसरी संगीति

सम्राट अशोक से 260 वर्ष पहले भगवान् बुद्ध हुए थे। अशोक के बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद से बौद्ध धर्म को राज्याश्रय प्राप्त हुआ। उस समय पाटलिपुत्र के अशोकाराम में लगभग 60,000 भिक्षु रहते थे। इसी प्रकार सारे देश में भी भिक्षुओं की संख्या बढ़ गई थी। उनका सम्मान भी बढ़ा था। इस आदर-सत्कार का फायदा उठाने के लिए कुछ दुष्ट लोगों ने भिक्षु वेश धारण कर लिया था।

कुछ समय पश्चात पाटलिपुत्र के विहारों में रहने वाले धर्मनिष्ठ तथा बनावटी भिक्षुओं में मतभेद बढ़ा। उस कलह को शांत न होते देख मोग्गलिपुत्र तिष्य दुःखी होकर अहोगंग पर्वत पर चले गये। भिक्षु कलह चार वर्ष तक चलता रहा। हर पूर्णिमा को प्रातिमोक्ष का दोहराना बंद हो गया। इस विनय कर्म को करने के लिए सब भिक्षुओं का एकत्र होना अनिवार्य था। झगड़े के कारण भिक्षु एक जगह नहीं बैठ सकते थे।

इस कलह को शांत करने के लिए सम्राट अशोक ने अपने एक अमात्य को विहार भेजा। उसके बहुत समझाने पर भी भिक्षुओं का झगड़ना शांत नहीं हुआ। वे राजदंड से नहीं डरे। गुस्से में आकर उस अमात्य ने कई भिक्षुओं के सिर काट डाले। यह हालत देख सम्राट के छोटे भाई तिष्य उसके सामने गए और बोले -

"हत्यारे, यदि काटना है तो मेरा सिर काट।"

सम्राट के भाई का सिर अमात्य कैसे काट सकता था! वह हार मान कर लौट गया। उसने सारी घटना सम्राट को सुना दी।

इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना को सुनकर सम्राट अशोक बहुत दुःखी हुए और साथ ही भिक्षुओं की हत्या के पाप से घबराए। वे स्वयं विहार गए। उन्होंने भिक्षुओं से पूछा कि इस कुकर्म के लिए दोषी कौन है ?

कुछ अज्ञानियों ने कहा-"राजन्, यह तुम्हारा ही दोष है।"

दूसरों ने कहा-"राजन्, तुम्हारा दोष नहीं है।"

यह सब सुनने के बाद सम्राट ने पूछा-"क्या कोई ऐसा सामर्थ्यवान भिक्षु नहीं है जो मेरी दुविधा का निवारण कर सके और धर्म का संग्रह कर इस सारे झगड़े को समाप्त कर सके।"

भिक्षुओं ने मोग्गलिपुत्र तिष्य का नाम बताया। यह सुनकर अशोक को संतोष हुआ।

अहोगंग पर्वत से मोग्गलिपुत्र तिष्य को बड़े आदर-सत्कार के साथ बुलाया गया। सम्राट उनका स्वागत करने के लिए गंगा के घाट पर गए। पानी में उतरकर उन्होंने महास्थविर को नौका से उतारा। महास्थविर मोग्गलिपुत्र तिष्य विहार में न ठहर कर राजकीय उद्यान में ठहरे।

दूसरे दिन अशोक ने विनम्रतापूर्वक महास्थविर मोग्गलिपुत्र तिष्य से पूछा--"अमात्य द्वारा भिक्षुओं के सिर काटे जाने का अपराधी कौन होगा ?"

महास्थविर ने उत्तर दिया- "जब तक कर्म के साथ मन दोष-युक्त नहीं होता, तब तक कर्म दोष-युक्त नहीं होता। तुमने अमात्य को सिर काटने के लिए नहीं भेजा था।"

इस के एक सप्ताह बाद सम्राट अशोक ने महास्थविर के साथ परामर्श करके अशोकाराम में एक विशाल सभा आयोजित की। वहां हर भिक्षु से एक ही प्रश्न पूछा गया- "भंते ! भगवान बुद्ध का क्या वाद (मत)है ?" किसी ने कुछ तो किसी ने कुछ उत्तर दिया। ऐसे सभी भिक्षुओं को राजाज्ञा से सफेद वस्त्र पहनाए गए।

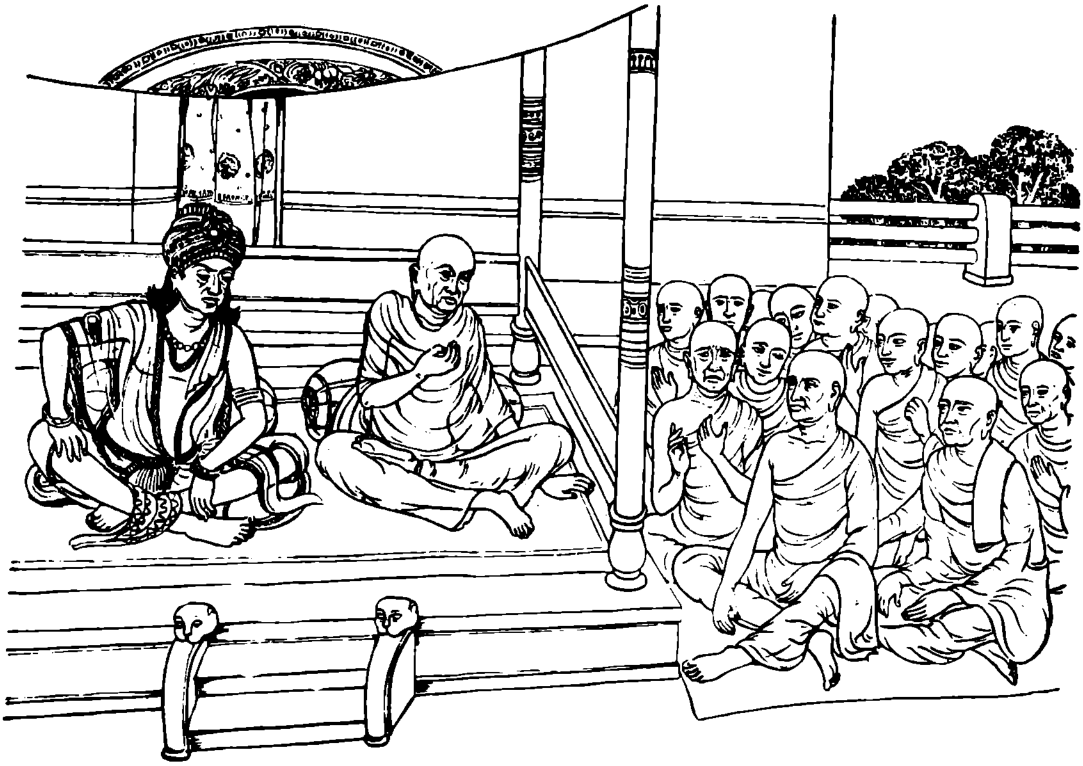

सम्राट अशोक ने महास्थविर के साथ परामर्श करके अशोकाराम में विशाल सभा आयोजित की

यही प्रश्न धर्मनिष्ठ भिक्षुओ से भी पूछा गया। उन्होंने उत्तर दिया-"सुगत (बुद्ध) विभज्जवादी थे।" (विभज्जवाद (संस्कृत रूप - विभाज्यवाद) बौद्ध-दर्शन की विभिन्न विचारधाराओं में एक है) ऐसे उत्तर देने वाले भिक्षुओं को शुद्ध माना गया। संघ को दोषमुक्त देख सम्राट अशोक अपने महल चले गये। उसके बाद भिक्षुओं ने विनय-कर्म किया।

मोग्गलिपुत्र तिष्य ने, 1,000 विद्वान भिक्षुओं को चुना। जिन्होंने पाटलिपुत्र में अशोकाराम में सद्धर्म का संग्रह किया। उस समय धर्मग्रंथ लिखित रूप में उपलब्ध नहीं थे। कोई न कोई ग्रंथ किसी न किसी भिक्षु को याद था। उन्हें शुद्ध करके दोहराया। इसी को तृतीय संगीति कहते हैं। इसका आयोजन सम्राट अशोक की देखरेख में मोग्गलिपुत्र तिष्य ने किया था। उस समय वह 75 वर्ष के थे। उन्होंने इस संगीति में दूसरे मतों का खंडन करने के लिए कथावस्तु नाम के ग्रंथ की रचना भी की। यह संगीति अशोक के राज्याभिषेक के सत्रहवे वर्ष में हुई।

इसी प्रकार की प्रथम संगीति भगवान बुद्ध के देहांत के चार मास पश्चात राजगृह में हुई थी। दूसरी संगीति भगवान् के महापरिनिर्वाण के सौ साल बाद वैशाली में कराई गई थी।

विदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार

सम्राट अशोक के बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद साधारण जनता भी उसकी ओर आकर्षित हुई। बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों पर आधारित अशोक का यह धर्म-राज्य हमेशा जनता की भलाई की बातें सोचता था।

धर्म-प्रचार के लिए राज्य के कोष से धन खर्च किया जाता। बौद्ध भिक्षुओं को भिक्षा तथा दान देने में अपनी उदारता का परिचय देने के कारण अशोक महान दानी कहलाए।

अशोक ने अपने राज्य में ही नहीं बल्कि पड़ोस के राज्यों में भी बौद्ध धर्म का संदेश पहुंचाने का प्रयत्न किया। यह अशोक की कामना थी कि जिस प्रकार उनके राज्य में सुख और शांति है, वैसे ही आसपास के देशों में भी सुख-शांति स्थापित हो।

तीसरी संगीति की समाप्ति पर अशोक ने मोग्गलिपुत्र तिष्य की सहायता से अपने राज्य के सुदूर प्रदेशों में तथा अन्य देशों में बौद्ध-धर्म के प्रचारक (धर्म-दूत) भेजे :

मज्झांतिक (माध्यमिक) स्थविर	कश्मीर और गांधार में
महादेव स्थविर	महिष्मंडल में
रक्षित स्थविर	बनवास में
यवन धम्मरक्षित स्थविर	अपरांत में
महरक्षित स्थविर	हिमवंत(हिमालय) प्रदेश में
महाधम्मरक्षित स्थविर	महाराष्ट्र में
सोण तथा उत्तर स्थविर	स्वर्णभूमि (बर्मा) में
महामंहिद और उनके छह साथी	श्रीलंका में

अशोक के शिलालेखों से पता चलता है कि इनके अलावा और भी देशों में धर्म प्रचारक भेजे गए थे। चंद्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार ने पश्चिम के देशों के साथ राजनीतिक सम्बंध स्थापित किए हुए थे। उन संबंधों को दृढ़ बनाने के लिए अशोक ने उन देशों में धर्म-प्रचारक भेजे। उन धर्म प्रचारकों के नाम ज्ञात नहीं हैं, किन्तु उनके गंतव्य स्थानों के नाम उपलब्ध हैं। वे थे - तुरमय,

एंटिकान, मग तथा एलेक्सेंडिया। इसी प्रकार दक्षिण में भी चोल, पांड्य और तंबपर्णा राज्यों में धर्मदूत भेजे गए। कंबोज, आंध्र, पुलिंद में भी प्रचार कार्य हुआ।

जब अन्य विहारों के साथ-साथ पाटलिपुत्र का अशोकाराम बनकर तैयार हुआ तो उत्सव का आयोजन कराया गया। अशोक उस समय बहुत ही खुश नजर आ रहे थे। उन्होंने गुरु मोग्गलिपुत्र तिष्य से नम्रतापूर्वक पूछा -

"भदंत ! बुद्ध धर्म में किस चीज का त्याग महान त्याग कहलाता है ?"

धर्म का दायाद बनने की कामना से अशोक ने पास खड़े कुमार महिंद और संघमित्रा से पूछा, "क्या प्रव्रज्या ग्रहण करोगे ? प्रव्रज्या महान है।"

स्थविर ने कहा--"भगवान बुद्ध के जीवन काल में भी तुम्हारे समान त्यागी कोई नहीं था।"

सम्राट ने पुनः पूछा, "क्या मेरे जैसा व्यक्ति धर्म का सगा (दायाद) कहला सकता है ?"

"राजन ! तुम्हारे जैसा व्यक्ति भी धर्म का दायाद नहीं हो सकता। जो अपने पुत्र या पुत्री को शुद्ध धर्म में प्रव्रजित कराता है, वही धर्म का दायाद तथा दायक दोनों कहलाता है।"

धर्म का दायाद बनने की कामना से अशोक ने पास खड़े कुमार महिंद और संघमित्रा से पूछा, "क्या प्रव्रज्या ग्रहण करोगे ? प्रव्रज्या महान है।"

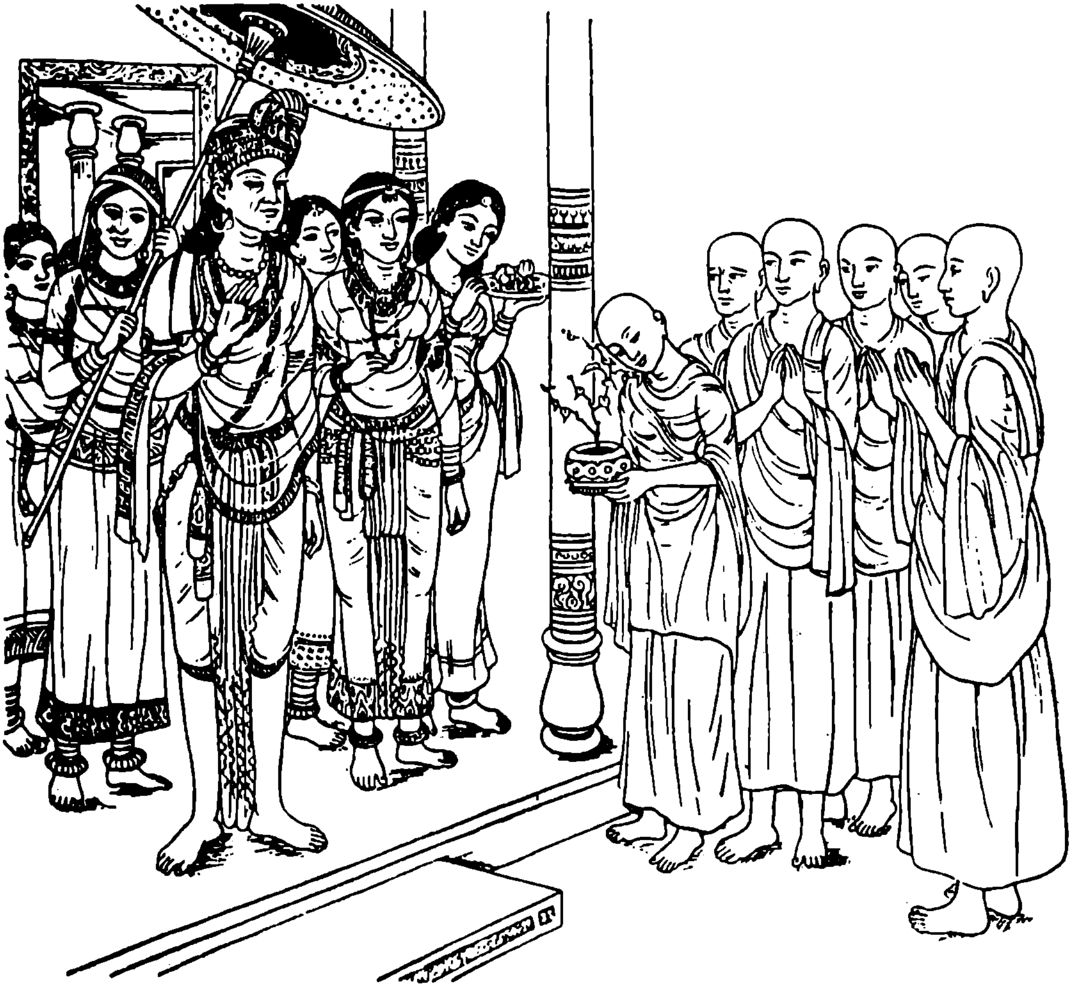

महिंद के बाद भिक्षुणी संघमित्रा भी बुद्ध गया के बोधिवृक्ष की एक शाखा लेकर लंका पहुंची

पिता की बात सुन उन दानों ने कहा--"देव ! यदि आपकी आज्ञा हो तो आज ही प्रव्रजित हो सकते हैं। हमारी प्रव्रज्या से हमें तथा आपको पुण्यलाभ होगा।"

उपराज तिष्य की प्रव्रज्या के दिन से महिंद और पति अग्निब्रह्मा की प्रव्रज्या के समय से संघमित्रा प्रव्रजित होने का निश्चय कर चुके थे। कुमार महिंद कुछ ही दिनों में उपराज बनने वाला था। किन्तु उसने उपराज पद से प्रव्रज्या को ही महान समझा। धूमधाम के साथ महिंद तथा संघमित्रा की दीक्षा संपन्न हुई। उस समय महिंद 20 वर्ष का और उनकी बहन संघमित्रा 18 वर्ष की थी।

महिंद अन्य पांच भिक्षुओं के साथ धर्म प्रचारार्थ लंका द्वीप गए। उस समय वहां के नरेश देवानांप्रिय तिष्य सम्राट अशोक के परम मित्र थे। पहले अशोक ने उन्हें राज्याभिषेक की सामग्री भेजी थी। इसी भेंट की याद में उन्होंने अपने नाम के साथ धर्म का दायाद बनने की कामना से 'देवानांप्रिय' उपनाम लगाया था। पिता की यही पूर्व मैत्री महिंद के धर्म प्रचार में सहायक सिद्ध हुई।

महिंद के बाद भिक्षुणी संघमित्रा भी बोध गया के बोधिवृक्ष की एक शाखा लेकर श्रीलंका पहुंची। कहते हैं कि उसका लगाया हुआ वही बोधिवृक्ष आज भी लंका के अनुराधापुर नगर में विद्यमान है। वहां महिंद ने भिक्षु-संघ तथा संघमित्रा ने भिक्षुणी-संघ की स्थापना की। तभी से उस देश में बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। महिंद तथा संघमित्रा दोनों में से कोई भी पुनः भारत लौटकर नहीं आए। वे ही नहीं, बल्कि जितने भी धर्मदूत बनकर विदेशों में गए थे, वे वहीं के हो कर रहे और उस देश की जनता के साथ घुलमिल गए।

आज भी महामहिंद का लंका-आगमन का दिन प्रतिवर्ष बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। श्रीलंका के लोग उन्हें द्वितीय बुद्ध अनबुद्ध के नाम से याद करते हैं।

अशोक और बौद्ध धर्म

कलिंग युद्ध में घायलों की चीत्कार तथा हत्याकांड ने अशोक के हृदय में उथल-पुथल मचा दी। इससे उनके विचारों में बड़ा परिवर्तन हुआ।

बौद्ध धर्म अपनाने पर सम्राट अशोक ने निश्चय किया कि उनका प्रमुख कर्तव्य संसार में सुख और शांति की स्थापना करना है। वे बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार में रत हो गए। उन्होंने साधारण जनता में नैतिकता और आध्यात्मिकता का प्रचार करने का प्रयत्न किया।

अशोक बौद्ध धर्म के पूर्ण अनुयायी थे। शिलालेखों मे उन्होंने इस बात को स्पष्ट स्वीकार किया है कि उनका विश्वास बुद्ध,धर्म तथा संघ में है। इसी भावना से उन्होंने सारे बौद्ध तीर्थों की यात्रा की। हजारों विहार, स्तूप और स्मारक खड़े किए।

अशोक ने बौद्ध धर्म को परिशुद्ध रखने के विचार से संघ का निरीक्षण करने के लिए कुछ विशेष पदाधिकारियों की नियुक्ति भी की थी।

सारनाथ के स्तंभ लेख से ज्ञात होता है कि वे बौद्ध धर्म के संरक्षक थे। उन्होंने संघ में भेद डालने वाले भिक्षुओं को दंड देने का विधान किया। वे कहते हैं--"जो भिक्षु या भिक्षुणी संघ में फूट डालेंगे, उनसे उनका चीवर छीन लिया जाएगा और सफेद वस्त्र देकर उन्हें संघ से बाहर कर दिया जाएगा।"

सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को सर्वसाधारण जनता की समझ में आने वाली भाषा में अपने शिलालेखों पर अंकित किया। इतना ही नहीं बल्कि विदेशों में धर्म प्रचारक भेजकर भारत के बौद्ध-धर्म को एक विश्व धर्म का स्वरूप प्रदान किया। इस कार्य में सम्राट अशोक ने अपने पुत्र तथा पुत्री को समर्पित कर दिया था। इन्हीं सब कारणों से आज सारे संसार में उन्हें 'महान अशोक' के नाम से याद किया जाता है।

बौद्ध धर्म में अशोक की असीम श्रद्धा थी। उसके लिए उन्हें जो-जो करना था, वह सब किया। किंतु उन्होंने अपने व्यक्तिगत धर्म को जनता पर जबरदस्ती लादने का प्रयत्न नहीं किया। बौद्ध धर्म के प्रचार में उन्होंने शक्ति या तलवार का उपयोग नहीं किया।

बौद्ध धर्म की जो शिक्षाएं सभी धर्मों के लोगों के ग्रहण करने योग्य थीं, वे शिक्षाएं उन्होंने अपने शिलालेखों पर खुदवाई। उदाहरण के लिए माता-पिता, गुरु तथा वृक्षों का आदर, सम्मान एवं सेवा करना। सेवकों तथा श्रमिकों के साथ समानता का व्यवहार रखना। मनुष्यों को पाप नहीं करना चाहिए आदि।

अशोक का हृदय विशाल, दयालु एवं दानी था। उन्होंने बौद्ध धर्म के साथ-साथ अन्य धर्मावलंबियों को भी उदारतापूर्वक दान दिया।

उन्होंने लोक हित या परोपकार के कार्यों पर विशेष ध्यान दिया। इससे बौद्ध धर्म लोकप्रिय हुआ। उन्होंने मनुष्यों के लिए ही नहीं, पशुओं के लिए भी दवाखाने खुलवाए। दवाखानों में निर्धनों को मुफ्त दवा दी जाती थी। औषधियुक्त पौधों के बाग लगाए गए थे।

सम्राट के आदर्श जीवन से उनकी प्रजा ने शिक्षा ग्रहण की। थोड़े में कहा जाए तो कलिंग युद्ध के उपरांत अशोक का संपूर्ण जीवन ही धर्ममय हो गया था।

अशोक और बौद्ध धर्म दोनों एक-दूसरे पर आधारित रहे हैं। जहां धर्माशोक का नाम लिया जाता है, वहां बौद्ध धर्म का नाम अपने आप आ जाता है और जहां बौद्ध धर्म का नाम लिया जाता है, वहां धर्माशोक का नाम अपने आप आ जाता है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

एक अद्वितीय सम्राट

अंग्रेज इतिहास-लेखक एच०जी०वेल्स ने अपनी 'संसार के इतिहास की रूपरेखा' नाम की पुस्तक में लिखा है--"अशोक का नाम बड़ी-बड़ी उपाधियों वाले सहस्त्रों शासकों में, जिनका वर्णन इतिहास में आता है, सितारे की तरह चमकता है। वोल्गा से जापान तक आज भी उनका नाम सम्मान के साथ लिया जाता है।"

दूसरे विद्वानों का विचार है कि मौर्य-वंश का तृतीय सम्राट न केवल भारतीय राजाओं मे उच्च था बल्कि इतिहास के महान व्यक्तियों में से एक था।

अशोक संसार के इतिहास में एक आदर्श, महान तथा उदार व्यक्तित्व वाले सम्राट रहे। विश्व इतिहास के मंच पर ऐसे कम ही सम्राट रहे जिन्होंने उन आदर्शों का पालन किया हो जिनका अशोक ने किया है। वास्वत में वह अद्वितीय सम्राट थे।

युवावस्था में उनका अधिकांश समय शिकार खेलनें में तथा आमोद-प्रमोद में ही गुजरता था। वह साम्राज्यवाद के पक्के समर्थक थे और दृढ़ संकल्पशील भी। वह कुशल सैनिक थे और उनमें योग्य सेनानायक के गुण मौजूद थे।

लेकिन कलिंग विजय के बाद उनका ध्यान सदा प्रजा के हित में ही लगा। उनका प्रजा के साथ पिता-पुत्र का सा संबंध था। वह कहते हैं, "मैं खाता होऊं, अंत:पुर में होऊं या शयनागर में, प्रतिवेदक लोग प्रजा-कार्य से मुझे सर्वत्र सूचित करें।"

जो काम महान् उपदेशक भी नहीं कर सकते, वे काम सम्राट अशोक ने किए। वह एक महान् उपदेशक एवं शिक्षक थे। साधारण जनता में कभी वेश बदल कर तो कभी सम्राट के रूप में घूमते। लोगों को नैतिकता तथा धर्म सिखाने के लिए धर्म-चर्चा करते थे।

अशोक उच्च कोटि के शासक भी थे। उन्होंने शासन-पद्धति में बहुत से नए परिवर्तन किए। उन्होंने राजकर्मचारियों को आदेश दिया था कि वे अपने आप को जनता का सेवक मानकर अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन करें।

अशोक महान राष्ट्र-निर्माता थे। उन्होंने भारत को एक महान राष्ट्र के रूप में संसार के सामने ला खड़ा किया। उन्होंने अपने लेखों में पालि भाषा का प्रयोग किया जो सर्व-साधारण की भाषा थी। इसके द्वारा उन्होंने संपूर्ण साम्राज्य में एकता स्थापित की।

अशोक एक सम्राट थे। किंतु उन्होंने अपने आप को कभी भी 'सम्राट' नहीं कहा और न ही उन्होंने अपने शिलालेखों में ही इसको स्थान दिया, जबकि अन्य कई छोटे-छोटे राजाओं ने अपने नामों के साथ बड़े-बड़े, लंबे-चौड़े विशेषण लगवाए, जैसे राजाधिराज आदि।

अशोक का नाम और पद शिलालेखों में देखने को मिलता है। मास्की में मिले शिलालेख में देवानाम् प्रिय अशोक कहा गया है। बौद्ध साहित्य में उन्हें धर्मराज अथवा धर्माशोक कहा गया है । देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी उनका राजकीय पद था और अशोक उनका नाम।

कहा जाता है कि सम्राट अशोक ने अपने अंतिम दिनों में बौद्ध भिक्षु की दीक्षा ग्रहण कर पूर्ण रूप से धार्मिक जीवन व्यतीत किया।

232 ई०पू० में इस महान सम्राट का देहांत हो गया।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

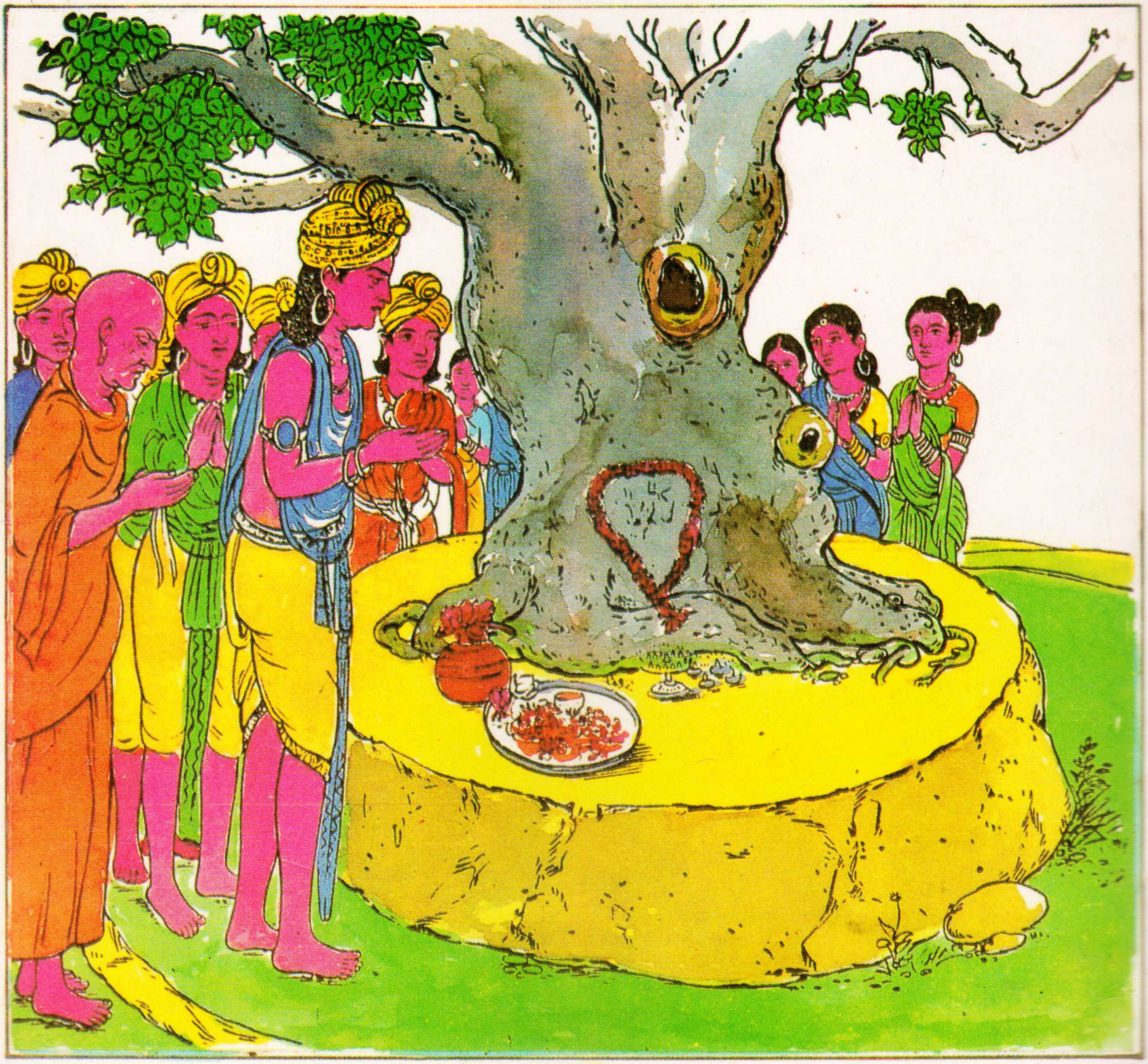

मूल्य : 24 रुपये

ISBN : 81-230-0242-4